मोक्ष प्रदायक काव्य

रचयिता

आचार्य श्री आर्जवसागर जी

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का

जीवन परिचय

पूर्व नाम	-	पारसचंद जैन
पिता जी	-	श्री शिखरचंद जैन
माता जी	-	श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	-	11.9.1967, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	-	फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	-	पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.)
शिक्षण	-	बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	-	19.12.1984, अतिशय क्षेत्र, पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	-	1985, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	-	8.11.85, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	10.7.1987, अतिशय क्षेत्र थूवोनजी
मुनि दीक्षा	-	31.3.1988, सि.क्षे. सोनागिरजी, महावीर जयन्ती।
दीक्षा गुरु	-	आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्यपद	-	25.01.2015 (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)

कृतियाँ व रचनाएँ

अध्यात्मिक प्रवचन, आर्जव कविताएँ, पर्युषण पीयूष, जैनागम-संस्कार (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती भाषा में), आगम-अनुयोग (भाग 1, 2), तीर्थोदय काव्य, लोक कल्याण विधान, सदाचार सूक्ति काव्य, ओम योग ध्यान, पद्यानुवाद मञ्जरी (गोमटेश थुदि, भक्तामर स्तोत्र, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, वारसाणुवेक्खा, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका), मोक्ष प्रदायक काव्य (आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग प्रभावना काव्य, तीर्थंकर स्तुति शतक, सम्यक्ध्यान शतक, श्री अंतादि शतक, गुरु-गुण महिमा काव्य, आशीर्वाद शतक, धर्म भावना शतक, अध्यात्म समयोदय काव्य)

मोक्ष-प्रदायक काव्य

ग्यारह सौ इक्तालीस पद्यों में
नव काव्यों की प्रस्तुति

रचयिता
आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज

कृति	-	**मोक्ष-प्रदायक काव्य**
रचयिता	-	**आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज**
संस्करण	-	**प्रथम, 2024**
प्रतियां	-	**1000**
पावन संदर्भ	-	**रजत रथयात्रा महोत्सव, 7 दिसम्बर 2024, पिड़ावा (राज.)**
पुण्यार्जक	-	नीलम कुमार जैन (नीलू मामा), श्रीमती प्रमिला जैन, बेटी सिद्धि जैन अशोकनगर (म.प्र.)
प्राप्ति स्थान	-	आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट 4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास बावड़िया कलाँ, भोपाल-462039 मो. : 7049004653, 9425011357, 9425601161, 9425601832
मुद्रक	-	**पारस प्रिन्टर्स (पवन जैन) 207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल फोन : 0755-4260034, 9826240876**

विषय-सूचि

क्र.	कृति का नाम	पृष्ठ क्रमांक
1.	आत्मोद्धार शतक	4
2.	सन्मार्ग प्रभावना काव्य (द्विशतक)	33
3.	तीर्थंकर जिन-स्तुति शतक	83
4.	सम्यक् ध्यान शतक	100
5.	श्री अंतादि शतक	145
6.	गुरु-गुण महिमा काव्य	161
7.	आशीर्वाद शतक	181
8.	धर्म-भावना शतक	199
9.	अध्यात्म समयोदय काव्य	224

मोक्षमार्ग का दिग्दर्शक : मोक्ष प्रदायक काव्य

इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह
(B.E., M.A. Phd. संलग्न)

आचार्य भगवन् श्री 108 विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित आचार्य गुरुदेव श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज द्वारा रचित मोक्ष प्रदायक काव्य (दश शतक) रूपी काव्य का सृजन आधुनिक भारतीय साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है। यह शतक संग्रह; अध्यात्म चेतना का संगम है। मोक्षप्रदायक काव्य मात्र आचार्य श्री की कृति ही नहीं बल्कि एक श्रेष्ठ संत की आतमा का आध्यात्मिक चिंतन है। निर्मल मधुर वाणी, सीमित सुंदर शब्द सरल-सहज भाषा मय पद्य रूप अनुभूति की लय समन्वित करके आचार्य भगवन् ने इस कृति को दश-शतक रूप 'मोक्षप्रदायक काव्य' नाम दिया।

गुरुदेव रचित अनेक ग्रन्थों के मन्थन रूप नवनीत दस-शतकों के अंतर्गत समाहित किया गया है। जिनका रसपान आप सबके जीवन में मंगलकारी सिद्ध होगा। इस काव्य के अंतर्गत :-

सबसे पहले क्रम में '**आत्मोद्धार शतक**' में आचार्य गुणभद्र रचित कृति 'आत्मानुशासन' की गाथाओं का सार पद्य रूप में करीब 107 पद्यों के माध्यम से वैराग्य की चर्चा की है। एवं अंत के 4 पद्यों और 2 दोहों के माध्यम से प्रशस्ति भी वर्णित की है। इस कृति का प्रारंभ सम्मेदशिखर (झारखण्ड) में एवं अंत छत्तीसगढ़

में हुआ। इस तरह इस कृति में कुल मिलाकर 113 पद्य हैं।

द्वितीय क्रम में '**सन्मार्ग प्रभावना काव्य**' में आचार्य श्री ने वर्ष भर में आने वाले सभी पर्वों का पद्य रूप वर्णन, संस्कार और समवसरण आदि की बातों तथा तीर्थ क्षेत्र वंदन रूप वर्णन किया है। जो कि द्वि-शतक रूप है। जिसमें 210 पद्यों में विषय वर्णन एवं अंतिम 4 पद्यों में प्रशस्ति भी लिखी है। इस कृति को आचार्य श्री ने अशोकनगर में सन् 2023 के चातुर्मास में रचा। इस तरह संपूर्ण पद्यों की संख्या 214 है।

तृतीय क्रम में '**तीर्थंकर जिन स्तुति शतक**' में आचार्य श्री ने पूर्व में पवई नगर में रचित 'जिनवर स्तुति' (चौबीस तीर्थंकर स्तुति) के दोहों में अतिरिक्त दोहों की रचना कर (पिड़ावा नगर में) करीब कुल 96 दोहे और अंत में प्रशस्ति रूप 9 दोहे बनाये। जिनमें चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति का गुणगान किया गया है। इस तरह इस शतक में कुल 105 दोहे हैं।

चतुर्थ क्रम में '**सम्यक् ध्यान शतक**' में ध्यान की प्रक्रिया को बताते हुये आचार्य भगवन् ने कुल 100 दोहों की रचना की। जिसमें ध्यान कैसे करें? कब करें? किसका करें? ध्यान के प्रकार और धारणाओं आदि सभी विषयों को पद्य एवं गद्य रूप में बतलाया है। अंत में 6 दोहों में अंतिम मंगल तथा 7 दोहों में प्रशस्ति भी लिखी है। इस कृति की रचना सन् 2008 में ग्वालियर वर्षायोग के काल में हुई। इस प्रकार उक्त कृति में कुल 113 दोहे हैं।

पाँचवे क्रम में '**श्री अन्तादि शतक**' के अंतर्गत अंत और

आदि शब्द की जोड़ी मिलाकर और आगमिक नैतिक विषयों पर विशिष्ट काव्य की रचना सूक्ति रूप में की है। उसमें 100 सूक्ति में विषय वर्णन एवं अंत में 4 दोहों में प्रशस्ति भी है। यह कृति ईसरी चातुर्मास 2022 में प्रारंभ होकर खनियांधाना (म.प्र.) में पूर्ण हुई। इस तरह कुल पद्यों की संख्या 104 है।

छठे क्रम में '**गुरु गुण महिमा काव्य**' में कुल 134 सूक्तियों के माध्यम से गुरु के गुणगान स्वरूप एक अलौकिक रचना की है। जिसमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय विजय, षड्‌ावश्यक, बारह तप, सप्त गुण, दस धर्म, तीन गुप्ति आदि का भी 126 पद्यों में सूक्ति रूप में वर्णन है। अंत में 8 दोहों के माध्यम से प्रशस्ति भी लिखी है। यह कृति पिण्डरई से नैनपुरी के विहार काल में लिखी गई। इस तरह कुल सूक्तियों की संख्या 134 है।

सातवें क्रम में '**आशीर्वाद शतक**'' आचार्य श्री की एक अनूठी कृति है जिसमें गुरु प्रदत्त आशीर्वाद स्वरूप सूक्तियों में गुरु की आन्तरिक प्रशस्त व उद्धारक रूप भावना का वर्णन किया गया है। इस शतक में कुल 108 दोहे एवं 6 दोहों में प्रशस्ति भी है। अतः कुल मिलाकर दोहों की संख्या 115 है।

आठवें क्रम में '**धर्म भावना शतक**' के अंतर्गत दस धर्मों की पद्यमय रचना है। इसमें 101 पद्यों के माध्यम से विषय वर्णन एवं 8 पद्यों में प्रशस्ति भी लिखी है। इस कृति को सन् 1991 एवं 2003 के कोपरगाँव चातुर्मास के दशलक्षण पर्व में लिखा गया।

इस प्रकार कुल 109 पद्यों के माध्यम से दसधर्मों की सुंदर विवेचना है।

अन्तिम नवें क्रम में **'अध्यात्म समयोदय काव्य'** में आचार्य कुन्दकुन्द विरचित समयसार ग्रंथ का सक्षिप्त सार समाहित है। जिसमें 130 दोहों में विषय वर्णन एवं अंत के 4 दोहों में प्रशस्ति की रचना है। यह कृति सन् 2021 के लखनादौन चातुर्मास में लिखी गई इस कृति में कुल दोहों की संख्या 134 है।

इस तरह इस **'मोक्ष प्रदायक काव्य '** में नव-काव्य-कृतियों के अंतर्गत कुल 1141 पद्यों/ दोहों/सूक्तियों का समावेश है। इन कृतियों की महिमा का विशेष वर्णन अनेक विद्वत् जनों ने अपने आलेख के माध्यम से किया है; जिसको पढ़कर आप कृति की अंतरंग विशेषता को जान सकेंगे। धर्म का रसास्वादन करने वाले स्वाध्याय प्रेमियों के अध्ययन के लिये यह एक महत्वपूर्ण कृति साबित हुई है।

आचार्य भगवन् के चरणों में त्रिबार नमोस्तु.....

23.11.2024

मार्गशीष कृष्णा अष्टमी

"आध्यात्मिक कृतियों का रहस्य"

इंजी. शोभित जैन, दमोह
(M.Tech)

जैनधर्म शासन के संपूर्ण संचालन का कार्यभार एक आचार्य परमेष्ठी के कंधों पर होता है। मुनि संघ के साथ-साथ समाज उत्थान रूप हमारे आचार्यों के आध्यात्मिक तल को छूने हेतु, उनकी साधना एवं साधुता स्वरूप रचनात्मक कृतियों में गोता लगाना होता है।

इसका एक मात्र उद्देश्य भव्य आत्माओं को आगम ग्रंथों का ज्ञान प्राप्त करा कर मोक्षमार्ग में आगे बढ़ना ही होता है। ऐसे मम गुरुणां गुरु आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित परम पूज्य आचार्य गुरुदेव श्री आर्जवसागरजी महाराज ने मोक्षमार्गो-पयोगी अनेक कृतियों का सृजन किया है।

जब से मैंने गुरुवर को जाना है वे अपनी अविरल लेखनी द्वारा नवीन रचनाओं एवं पद्यानुवाद के माध्यम से जनमानस में संस्कृति, साहित्य और जैनदर्शन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करते रहते हैं। यह सभी स्वाध्याय प्रेमी श्रावकों के लिए ज्ञानवर्धन में उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

इसी क्रम में, साधारण सरल जन सामान्य की भाषा में सब जीवों के कल्याण हेतु की गई अद्वितीय अद्भुत कृति आचार्य गुणभद्र विरचित आत्मानुशासन ग्रंथ को आधार बनाकर और

अपने चिन्तवनात्मक भावों को 113 पद्यों में 'आत्मोद्धार शतक' नाम से सुशोभित किया है। इसके पद्यों में वैराग्य की प्रधानता देखी जा सकती है जो कि संसार समुद्र से तरने और आत्म विशुद्धि हेतु बहुत उपयोगी है।

आचार्य गुणभद्र स्वामी ने तो आत्मानुशासन बड़े विस्तृत रूप में बनाया है जिसकी महिमा अपरम्पार है लेकिन गुरुदेव ने उसके कुछ पद्यों को चुनकर उनका अनुवाद कर तथा कुछ अपना भी चिन्तवन जोड़कर वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मिथ्यात्व, पाप और व्यसनों पर कुठाराघात किया है जो कि अति जरूरी है संदर्भित भी है। इसी विषय पर मैं कुछ पद्यों का विषय प्रस्तुत कर रहा हूँ जो कि मात्र कृति परिचय रूप ही होगा। अंतरंग को समझने या गहराई के रत्न पाने हेतु आपको ऐसी आत्मोद्धार शतक रूप कृति को आद्योपान्त कई बार पढ़ना होगा। इस कृति में आचार्यश्री आर्जवसागरजी की जीवन साधना भी परिलक्षित होती है जिसे आप पढ़कर फूले नहीं समाएँगे। यहाँ तक कि अश्रुधारा भी स्वाभाविक बह पड़ेगी। बस अपनी दृष्टि बदलकर मोक्ष मंजिल की ओर अवश्य रखना।

इस पावन कृति में, आचार्यश्री ने कृति लिखने का भाव जिस पद्य में प्रकट किया है, वह निम्नानुसार है-

महारोगमय दुःख से डरकर, सुख ही जग-जन चाह सदा।
शुभ-भावन यह लखकर मैं भी, देता शिक्षा पढ़ो सदा॥

कटु-औषध ज्यों व्याधि हरे व, रोगी-तन को स्वस्थ करे।
वैसे ही कटु-वच, तप आदिक, जन्म जन्म के कष्ट हरें॥ 2॥

पद्य नं 4 व 5 में आगम वक्ता का स्वरूप बड़े ही मार्मिक ढंग से बतलाया गया है। इसी तरह पद्य नं. 6 में श्रोता का लक्षण व गुणों का वर्णन बड़े ही भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। पद्य नं. 7 में गुरु आशीष का अधिकारी श्रोता किस तरह होता है यह बतलाया है। पद्य नं. 8 में आगमकर्त्ता जिनेन्द्र प्रभु लक्षण बहुत ही सुंदर शब्दों में गाया है।

पद्य नं. 9 और 10 में सम्यग्दर्शन एवं उसकी महिमा गाई है। पद्य नं. 13 से 16 में इंद्रियों के सर्व सुख, धर्म व पुण्य के ही फल हैं ऐसा बतलाते हुए धर्म सुरक्षा व वृद्धि करने की प्रेरणा दी गई है।

पद्य नं. 23 व 24 में, उपसर्ग बाधाओं को सहने तथा पुण्य वृद्धि की प्रेरणा दी गई है।

पद्य नं. 29 से 47 तक स्त्री आदिक इंद्रिय विषयों के त्याग की पावन प्रेरणा दी गई है और वैराग्य को धारण कर संसार से मुक्त होने का उपाय बतलाया गया है। पद्य नं. 48 से 53 तक स्वजनों के स्वार्थ परक जीवन की झांकी दर्शाई गई है।

पद्य नं. 54 से 69 तक मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का किस तरह उपयोग करना चाहिए एवं गृहस्थ जनों के जीवन में होने वाली कमजोरियों पर प्रकाश डाला गया है। पद्य नं. 70 से 82

तक जिनधर्म की महिमा व उच्चकुल की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है।

पद्य नं. 83 से 104 तक इंद्रिय विषय त्याग व नर-नारी जीवन की सार्थकता का सुंदर विवेचन किया गया है।

इसी क्रम में 'गुरु गुण महिमा' काव्य में हम देख सकते हैं कि आसाधारण प्रतिभा के धनी अपने दीक्षा गुरु की पारखी नजर से तराशा गया कोहिनूर हीरा, आज उनकी महिमा का गुणगान करने में किस प्रकार समर्थ है। 131 पद्यों में रचा गया यह काव्य गुरु के गुणों की महिमा और उनके आशीर्वचनों को उद्घोषित करता नजर आता है।

'गुरु-गुण-महिमा सूक्ति-काव्य' में आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ने सद्गुरुओं के महान गुण एवं उनके आशीष की महिमा को एक सूक्ति-काव्य की अनूठी विद्या में दर्शाया है। इस काव्य में आचार्यश्री की एक पूर्व रचित 'सदाचार सूक्ति-काव्य' की शैली ही अपनाई गई लगती है, जिसमें गुरु दृश्य नामक शीर्षक के अंदर भी गुरु की महिमा को बताया था परन्तु इतने से तृप्ति नहीं हुई इस कारण एक और गुरु के संदर्भ में काव्य रच डाला। धन्य है गुरु की महिमा, वे अपने गुरुओं की स्तुति गाते गाते नहीं अघाते।

इस गुरुगुण-महिमा काव्य में गुरुदेव ने उन्हीं निर्ग्रन्थ गुरुओं को उपासित बतलाया है जो हमारे सम्यक्त्व की पुष्टि में निमित्त हैं। जैसे कहा है कि-

निर्ग्रन्थों की करें उपासना।
ग्रन्थ रखें गुरु कदा पास ना॥

इसी तरह से इस सूक्ति काव्य में-

पद्य 1 से 4 तक सच्चे देव शास्त्र गुरु का लक्षण, पद्य 5 से 32 तक मुनियों के 28 मूलगुणों का वर्णन, पद्य 33 से 37 तक आचार्यों के पंचाचारों का वर्णन, पद्य 38 से 47 तक 10 धर्मों का सुंदर संक्षिप्त कथन, पद्य 48 से 53 तक 12 तपों को दर्शाया गया है।

पद्य 54 से 56 तक महान आचार्यों की तप गुप्तियाँ तथा पद्य 57 से 126 तक वीतरागी निर्ग्रन्थ गुरुओं के आशीष की महिमा को बहुत उत्कृष्ट शब्दों में दर्शाया है। ऐसे शब्दों की संयोजना कोई सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता अपितु वही कर सकता है जो आगमिक उत्कृष्ट चर्या को अपने जीवन में उतार लेता है। उसी का यह फल है कि जो हमें गुरु के अंतरंग को पढ़ने का सुअवसर इस काव्य में मिल रहा है। इसी काव्य में स्वयं गुरु-शब्दों में प्रकट है कि-

गुरु-गुण गाना भाग्य रहा है।
चरण मिलें सौभाग्य कहा है॥69॥

गुरु की सीख भाग्य से मिलती।
अनुभव-वृद्धि कार्य जु करती॥85॥

इस काव्य की समीक्षा में अंत में यही भावना इसी काव्य

की पंक्तियों से भाते हुए कहते हैं कि-

गुरु माँझी हैं, पार-लगाते।
ना छोड़ें गुरु, भव-तिर जाते ॥ 107 ॥

मोक्ष-पथ गुरु से, शुरु होता है।
बिन गुरु; जीवन शून्य होता है ॥ 122 ॥

मोक्ष-पथ गुरु से पूर्ण होता है।
गुरु-सह जीवन धन्य होता है ॥ 123 ॥

गुरु बिन लक्ष्य दूर होता है।
गुरु हों, लक्ष्य निकट होता है ॥ 125 ॥

हे ! जिन-मुद्रा-धारक-गुरुवर।
सदा नमन भव-तारक गुरुवर ॥ 126 ॥

इसी क्रम में आचार्य कुंदकुंद देव विरचित समयसार ग्रंथ की कुछ गाथाओं का पद्यानुवाद एवं अन्य विशेष चिन्तन रूप भावना से अध्यात्म समयोदय शीर्षक के अंतर्गत, प्रत्येक पद्य में आत्मा की मुख्यता को 'समय' शब्द से दृष्टिगोचर होते दिखाया है।

आज से द्वि-सहस्राब्दी वर्ष पूर्व हुए आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित चौरासी पाहुड ग्रंथों में निश्चय व्यवहार नय की गूढ़तम शैली को बतलाने वाला श्रेष्ठतम ग्रंथ समयसार; विद्वान गणों में बहुचर्चित ग्रंथ है जिस पर महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी ने विशेषार्थों सह हिन्दी टीका निर्मित की तथा आचार्य विद्यासागर

महाराज ने जिस महान ग्रंथ का पद्यानुवाद बसंततिलका छंद में किया तथा जो प्रकाशित भी है। इसी का अध्ययन और अध्यापन कर धर्म प्रभावक आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ने सारभूत लघुकाव्य रूप, दोहों में 'अध्यात्म-समयोदय' बनाया, जिसमें 134 दोहे रचे गये हैं और निश्चय व्यवहर के रहस्य को अनेकान्त रीति से रचते हुए आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ने प्रत्येक काव्य में 'समय' शब्द का प्रयोग बड़े योग्य ढंग से किया है जिसका अर्थ आत्मा, जीव, केवली आदि के अर्थ में केवल चेतना के रूप में हुआ है।

आज दोहों को गाने की शैली बड़ी रोचक मानी जाती है जिस वजह से भव्य लोग अध्यात्म की गंगा में डुबकी लगाकर फूले नहीं समायेंगे और कुन्दकुन्द हृदय तक पहुँचकर उनकी महिमा अवश्य गाएँगे तथा अनेकांत द्वारा अपने जीवन को अध्यात्म से जोड़कर भव-सफल बनाएँगे। सबसे पहले गुरुदेव ने सर्व सिद्धों को मंगल रूप में नमस्कार कर रत्नत्रय के साथ समयसार के कर्त्ता श्री आचार्य कुन्दकुन्द को प्रथम दोहे में ही नमस्कार किया है-

जिन-सिद्धों को हो नमन, दर्श, ज्ञान, व्रत-धार।
कुन्दकुन्दाचार्य ने, कहा समय का सार॥ 1॥

पुनः स्वसमय और पर समय का लक्षण बतलाते हुए कहा है-

रत्नत्रय में लीन हो, स्व हि समय जो सार।
पर में होता पर-समय, यही समय का सार॥ 3॥

आगे, भेदाभेद रत्नत्रय का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि-

रत्नत्रय जहँ राग है, वहाँ भेद - व्यवहार।
रत्नत्रय की एकता, जहाँ समय का सार॥ 4॥

फिर निश्चय व्यवहार लक्षण हेतु कहा है कि-

निश्चय-नय निज-भाव का,-कर्त्ता जीव विचार।
जड़-कर्त्ता व्यवहार से, निजी समय का सार॥ 10॥

एक जगह ऐसा भी कथन है कि जीवसमास एवं गुणस्थान रूप अवस्थाएँ आदि जीव की सांसारिक अवस्थाएँ हैं जो कि अशुद्ध नय का विषय जानना चाहिए-

जीव-समास जु जीव में, अशुद्ध-नय से जान।
गुणस्थान भी जीव ना, समयसार की शान॥ 23॥

जीव के साथ होने वाले कर्म या शरीरादिक पर द्रव्यों के मिलने-बिछुड़े रूप ग्रहण मेल-भाव का कार्य, पूर्व कर्म के निमित्त से होता है, साथ ही वर्तमान का भाव, आगे के लिए कारण बन जाता है, लेकिन निश्चय में, पदद्रव्य का कोई सम्बन्ध नहीं-

निश्चय से पर-द्रव्य का, ग्रहण-मेल न जान।
निमित्त-नैमित्तिक कहे, समयसार का ज्ञान॥ 29॥

इसी तरह, अन्य द्रव्य और भाव का कर्त्ता यह आत्मा, व्यवहार रूप में कहा गया है कि-

अन्य-द्रव्य अरु भाव का, कर्त्ता आतम जान।
नय व्यवहार हि बोलता, समयसार में जान ॥ 47 ॥

बंध और मोक्ष के विषय में जैसा कि आचार्य कुन्दकुन्द देव ने कहा है कि-

रत्तो बंधदि कम्मं, मुञ्चदि जीवो विराग संपण्णो।
ऐसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्जह ॥ 150 ॥

इसी प्रिय गाथा का भाव प्रकट गुरुदेव ने कुछ इस तरह किया है-

रागी बंधता कर्म से, मुक्त विरागी जान।
राग-छोड़ना, जिन कहें-सार; समय का ज्ञान ॥ 50 ॥

समवसरण में विराजित अर्हन्तों के वे समवसरण जैसे भोग या उसका जानना देखना अथवा वीतरागी संतों के सामने आए, भोग, इन्द्रिय विषय; उनमें राग न होने से वे निर्जरा के कारण होते हैं अतः इसी विषय पर प्रकाश डालते हुए गुरु देव समयसार के अनुरूप लिखते हैं कि-

वीतराग - समदृष्टि के, नहीं भोग में आश।
भोग रहें; पर निर्जरा, समयसार निज-पास ॥ 59 ॥

इसके विपरीत जो रागी परमाणु मात्र विषयों में राग करता है उसे आत्मा या समय के विषय में सुप्तता होती अर्थात् चाहे पूरे आगम का ज्ञानी हो तो भी वह आत्मानुभव से वंचित रहता है ऐसा समयसार में कहा गया है। इसी का भाव इस कृति में ऐसा है कि-

परमाणु – सम संग में, जिसका होता राग।
पूर्ण–विज्ञ क्यों न रहे, नहीं समय में जाग॥ 60॥

इसी तरह 64 वें एवं 65 वें पद्य में ज्ञानी–अज्ञानी किस तरह बंधक और अबंधक होता है ऐसा वर्णित किया है। 67 वें और 68 वें पद्य में संसारी की शुद्ध अवस्था कब–कैसी प्रकट होती इसका वर्णन किया गया है। पद्य नं 104 में अभव्य का पुरुषार्थ सर्प को मिष्ठ दुग्ध पिलाने पर विष में बदलने जैसा बतलाया है। पद्य नं 127 व 128 में समयसार से अध्यात्म के नवनीत की बात तथा समय के अनेक अर्थों को दर्शाया है। अंत में पद्य 129 से समयसार के स्वाध्याय का फल आदि का वर्णन कर 'अध्यात्म समयोदय' का उपसंहार किया गया है।

अंत में भेद–विज्ञान और साधुगणों के महत्व को बतलाया है तथा ग्रन्थ रचने का प्रयोजन–फलस्वरूप रचयिता की अपने जीवन को सफल बनाने की भावना प्रकट की गई है।

पुनः परमोपकारी अध्यात्मयोगी आचार्यप्रवर श्री आर्जवसागरजी महाराज के प्रति अत्यंत भक्तिभाव–पूर्वक नमोस्तु! जिनकी यथार्थ तत्त्व–प्ररूपणा से मोक्षमार्ग को समझा, उस ओर रुचि बढ़ी मैं सौभाग्यशाली हूँ कि उनका आशीर्वाद मुझे मिला ऐसे गुरु की वाणी को सुन मोक्षमार्ग मेरे अंतर में प्रकट होकर जयवंत रहे उस पर अप्रतिहत भाव से चलने की शक्ति प्राप्त होती रहे। ऐसी मंगल भावना के साथ गुरुवर के चरणों में बारम्बार नमन, वंदन अर्पण।

जिनमहिमा प्रदर्शक : सन्मार्ग-प्रभावना काव्य

इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह
(B.E, M.A, Phd. संलग्न)

जिनशासन की गरिमा को प्रकाशित करने वाला, सर्व जगत् का कल्याण करने वाला 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' एक अद्वितीय कृति है; जिसके लेखक तप ज्ञान प्रभावक आचार्य गुरुदेव श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज हैं।

सन्मार्ग अर्थात् वह मार्ग जिसके द्वारा भव्य जीव शुद्ध बुद्ध बने। उस सत् मार्ग अर्थात् मोक्ष मार्ग की प्रभावना को कहने वाला काव्य 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' है।

इस 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' में आचार्य भगवन् ने; वर्ष भर में आने वाले पर्व / त्योहार, कल्याणक, तिथियाँ, पंचकल्याणक-विधान, आदि के साथ-साथ सभी धार्मिक स्तोत्र, पाठ, और सिद्धक्षेत्र-अतिशयक्षेत्र की महिमा व आयोजित कार्यक्रमों (पाठशाला सम्मेलन, संगोष्ठी) आदि को पद्य रूप में वर्णित किया है। यह अलौकिक काव्य संपूर्ण जनमानस के साथ-साथ सभी विद्वानों / पण्डितों / प्रवचनकारों को अति महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' के माध्यम से वे विद्वतजन जैन धर्म के संबंध में उसी context की महिमा का ज्ञान प्राप्त उस पर अपना वक्तव्य प्रस्तुत कर सकते हैं एवं context संबंधी कुछ पंक्तियों का प्रयोग मुक्तक रूप में कर सकते हैं।

सन्मार्ग प्रभावना काव्य में सर्वप्रथम भगवान महावीर को नमस्कार कर मंगलाचरण किया है। उसके बाद हम सबके पूज्यनीय देव-शास्त्र-गुरु की महिमा का गान कर वर्षायोग के महत्व का ज्ञान कर उसमें आने वाले पर्व जैसे- मोक्षसप्तमी वीर शासन जयंती पर्व, संबंधी सुंदर पद्यों का संयोजन है। इसके बाद इसी काव्य में सत्तर (70) तरह की भावनाओं, ध्यान के भेद-प्रभेद, संगोष्ठी आदि कार्यक्रमों का एवं रक्षाबंधन पर्व की महिमा का अलवोकन कराने वाले पद्यों का अति सुंदरतम वर्णन है। उसी क्रम में महापुरुषों से पूज्य तिथियों का महत्व, सप्त परम स्थान, अष्ट-प्रवचन मातृकाएँ, ईर्यापथ-प्रतिष्ठापन आदि अष्ट शुद्धियाँ भी विशेष रूप से पद्य के माध्यम से वर्णित हैं।

आचार्य परमेष्ठी श्री आर्जवसागर जी महाराज ने इस unique कृति 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' में भाद्रपद माह में आने वाले चा.च. आचार्य शांतिसागर जी महाराज के समाधि दिवस, षोडस-कारण पर्व की महिमा एवं सोलह भावना एवं दशलक्षण पर्व की महिमा एवं दश धर्म, रत्नत्रय व्रत पर्व, क्षमावाणी-पर्व आदि का एवं अंत में आयोजित विमानोत्सव-रथयात्रा हेतु पद्यों का संयोजन बहुत ही सुंदर ढंग से किया है। इसके बाद पाठशाला के बच्चों संबंधी संस्कार-भावना, संस्कार की महत्ता, पाठशाला सम्मेलन का प्रस्तुतिकरण तो बड़ा ही महत्वपूर्ण है। संस्कार भावना की पंक्तियाँ तो इतनी उपयोगी है कि जो पढ़कर उसे

आचरण में उतार ले, उसका जीवन महान बन जाये। इसी क्रम में समवशरण भावना के पद्य भी मनमोहित करने वाले हैं। उसे पढ़कर ऐसा लगता है मानों साक्षात् समवशरण में ही भगवान की स्तुति करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा हो। इसके बाद वर्षायोग के अन्त में आने वाले दीपावली पर्व, धन्य त्रयोदशी एवं पिच्छिका परिवर्तन के अति उपयोगी पद्यों का समायोजन गुरुदेव ने करके हम सब पर बहुत बड़ा उपकार किया है। चातुर्मासोपरांत आने वाले अष्टाह्निका पर्व की महिमा एवं सिद्धचक्र महिमा का मंगलमय गान भगवान की भक्ति करने का सुंदरतम माध्यम ज्ञात होता है। इसी क्रम में प्रथम तीर्थ भावना, भ.आदिनाथ के जीवन कृत्त की महिमा का ज्ञान कराने वाली ऋषभदेव वैभव रूप कविता, एवं उनकी पञ्चकल्याणक तिथियाँ तदुपरांत भगवान महावीर के जन्म कल्याणक महोत्सव का दिग्दर्शन कराने वाली महावीर जयंती, अक्षय तृतीया पर्व, जिनवाणी की महिमा का बोध कराने वाला श्रुत-पञ्चमी-पर्व-महोत्सव के रूप में पद्यो का प्रस्तुतिकरण बड़ा ही अद्‌भुत है।

इसी 'सन्मार्ग प्रभावना कृति' में शास्त्राध्यन-महिमा रूप पद्यों की रचना जिसमें जैनागम के सभी ग्रन्थों एवं गुरुदेव रचित सभी कृतियों के नाम दर्शित किये गये हैं। एवं इसी क्रम के अंतर्गत साधु-साधना एवं सावधानी, साधु सेवा का फल, धर्म-परिक्षण, धर्म-पालन का फल एवं जैनागम के अंतर्गत भगवान की भक्ति-

स्तुति करने वाले सभी प्रमुख स्तोत्र/भावनाएँ एवं उनसे होने वाले अतिशय, भक्ति का फल भी पद्य रूप से बहुत से सुंदर ढंग से सरल लिपि में वर्णित है। गुरुजी ने प्रभु भक्ति के अतिशय रूप पद्यों के बाद तीर्थों का दिग्दर्शन कराने वाली तीर्थ-भावना, पञ्च-महातीर्थ वंदन, सिद्धक्षेत्र और अतिशय क्षेत्रों के वंदन स्वरूप पद्यों की रचना कर एक महान कृति 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' का सृजन किया है। इस काव्य को लिखकर आत्म साधना के हिमालय आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ने लोक उपकारक कार्य करके जैन धर्म का प्रभाव और उसकी प्रभावना को साधारण जनता में फैलाने का प्रयास किया है। साथ ही व्यक्तित्व प्रभाव गुरुदेव ने इस अद्वितीय कृति 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य' के माध्यम से मोक्ष मार्ग, सत्य-मार्ग, अहिंसा-मार्ग अर्थात् वह मार्ग जिसके द्वारा हमारी आत्मा शुद्ध बने; को बताने का भी प्रयास किया है।

जिन माहात्म्य प्रभावक आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज एक ऐसे व्यक्तित्व है; जिनका प्रभाव न केवल जन सामान्य अथवा विद्वत्वर्ग पर पड़ा है, अपितु किसी न किसी रूप में उनके पूर्वकालिक, समकालिक एवं वर्तमान समयी श्रमणों पर भी दिखाई देता है। आचार्य भगवन् को चाहे वे मुनि-आर्यिकाएँ हो अथवा व्रतीगण हो सभी लोग उन्हें महावीर भगवान के नाम से जानते हैं। जिनका मन सदैव आत्म साधना में अग्रसर रहता है। आचार्यश्री जी का जो मन है, उनकी जो वाणी है और उनका जो

तन है उन पर उनका कमाल का संयम है। बस इन तीन शब्दों में ही उनका जीवन आ जाता है किन्हें सामायिक में बैठे देख लें तो उनमें भगवान महावीर की मूरत दिखाई देती है। गुरुवर के संबंध में जितना कहें उतना कम है। शब्द छोटे हैं, साधक बड़े हैं। भाषा कम है, साधना बहुत बड़ी है। गुरुजी का जीवन हम सभी के लिये आदर्श है। आचार्यश्री जी के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप आराधना से जिस प्रकार जिनधर्म की प्रभावना हुई है उससे संपूर्ण विश्व प्रभावित हुआ है।

यह कृति गुरुदेव की लेखनी के माध्यम से सन् 2023 के पावन वर्षायोग के काल में अशोकनगर (म.प्र.) में रची गई। जो कि अशोकनगर चातुर्मास में हुई धर्म प्रभावना की उपलब्धि के माध्यम स्वरूप सिद्ध हुई। इस तरह आचार्य भगवंत की साहित्य साधना विपुल है। आप अपने वचनामृतों के माध्यम से जन्मकल्याणक में निरत रहते हुये व साधना की उच्चतम सीढ़ियों पर आरोहण करते हुये गुरुदेव श्री आर्जवसागर जी महाराज ने समग्र देश के करीब 14 प्रांतों में पद विहार कर सम्यग्दर्शन का परचम फैलाकर जैनधर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है। गुरुदेव रचित सभी काव्यों में अनेक सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं जिनमें देव-शास्त्र-गुरु की महिमा के साथ-साथ आधुनिक समस्याओं की व्याख्या तथा समाधान भी है, जीवन के सन्दर्भों में मर्मस्पर्शी वक्तव्य भी है। सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्रों में व्याप्त

कुसंस्कार, कुरीतियों का निदर्शन भी है।

सर्व जगत् का कल्याण करने वाला यह 'सन्मार्ग प्रभावना काव्य कृति' को रचने वाले मम् आराध्य गुरुदेव श्री आर्जवसागर जी महाराज के चरणों में बारंबार नमोस्तु निवेदित कर उन्हें प्रणाम करती हूँ।

गुणधारी है परम पूज्य हैं, गुण अनंत के धाम गुरु।
धर्म ध्वजा को फहराते हैं, लगते जैसे वीर प्रभु।
जगत् पूज्य श्री आर्जवसागर, गुरु को मेरा हो वंदन।
विद्यार्जव गुरु के चरणों में, शत् शत् करते अभिनंदन॥

कलयुग में सतयुग की चर्या, रत्नत्रय के धारक हैं।
त्याग तपस्या में मम गुरुवर, सतयुग जैसे साधक है।
जिनका यश चारित्र ज्ञान का, फैल रहा है अपरंपार।
ऐसे विद्यार्जव गुरुवर का, हर्षित हो करते जयकार॥

आचार्य भगवंत के चरणों में नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु

11/04/2024

चैत्र शुक्ला तृतीया

आध्यात्मिक कृति सम्यक् ध्यान शतक

प्रो. डॉ. विमला जैन 'विमल' फिरोजाबाद (उ.प्र.)
स. सम्पादिका–जैन महिलादर्श
पू. संयुक्त मंत्री–अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद्

'सम्यक् ध्यान शतक' परमपूज्य गुरुदेव आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज की स्वरचित काव्य कृति है। 'एक सौ तेरह' दोहों का संकलन यही भाव स्पष्ट करता है कि 'एक स्व आत्मा वही तेरा है।' अतः उसी को ध्यान द्वारा परिमार्जित कर परमात्मा बना ले। कवि–हृदय, अनुभव–सिद्ध आचार्यश्री ने मंगलाचरण में सिद्ध–जिन सम आप स्वरूप पाने के लिए सम्यक् ध्यानी बनने को नमन किया है। तत्पश्चात् भूमिका में कर्म बन्धन की मुक्ति के लिए पर पदार्थ से विरक्तता और ध्यान की समीचीनता बतलाई है। कृति एक आत्म–साधक–निर्ग्रन्थ मुनि द्वारा रचित है। अतएव उनके संयम तप–त्याग वैराग्य और ज्ञान–ध्यान का अनुभव व अभ्यास दोहों में, साकार हुआ है। यथा–

मन पूरे जग में फिरे, एक जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान।।

–में अनुभवानीत अभिव्यंजना है। ध्यान की अवस्थाओं में सहयोगी सामग्री क्या हो सकती है? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की समीचीनता पर प्रकाश डाला है। ध्यान के प्रकार की मीमांसा तथा फलश्रुति एवं ध्यान के स्वरूप को भी सूत्र रूप में बताया गया है। लेखक स्वगुरु से ज्ञान–ध्यान का आशीष प्राप्त कर चुके हैं, स्वयं

भी ध्यान लगाने के अभ्यासी हैं तथा पूर्वाचार्यों की पुराकृतियों के अध्येता हैं। अतः ध्यान जो साक्षात् मोक्ष का कारणभूत है उसकी परिचर्चा समीचीन है। त्रियोग की सम्यक् समन्वयता में जो शुक्ल ध्यान होता हैं वह मोक्ष प्रदायक, जन्म-मरण के शोक का निवारक होता है। अतः आचार्यश्री ने उसकी विवेचना काव्यात्मक सूत्ररूप में की है जो स्तुत्य है। कृति कला-पक्ष और भाव-पक्ष की उपयुक्तता के साथ आध्यात्मिक रसानुभूति का आनन्द देने वाली है।

मुझे आशा है कि पाठक वृन्द इस कृति को पढ़कर आनन्दित तो होंगे ही जीवन को सार्थक करने के लिए ध्यान की प्रक्रिया को समझ और अन्यान्य आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय करने को प्रेरित होंगे। पूज्य गुरुदेव के आश्रय में ध्यान का अभ्यास कर शिवत्व की ओर बढ़ें यही मेरी अन्तर्कामना है। मैं भी गुरुभक्ति और श्रुत-आराधना के साथ-साथ ध्यान का सम्यक् स्वरूप पा सकूं। इसी भावना के साथ परमपूज्य आचार्यश्री के चरणों में कोटिशः नमोस्तु।

गुरु चरणों में नमन कर, चाहूँ सम्यक् ध्यान।
गुरो कृपा हो विमल मति, पाऊँ सम्यक् ज्ञान।।

एक श्रेष्ठ कृति सम्यक् ध्यान शतक

डॉ. बी.एल. सेठी
एम.ए., एम.फिल.,पीएच.डी., जैनदर्शनाचार्य, डी. लिट्
पूर्व अध्यक्ष - इतिहास विभाग,
सेठ मोतीलाल (पी.जी.) कॉलेज, झुन्झुनू (राज.)

'सम्यक् ध्यान शतक' आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज की एक श्रेष्ठ कृति है। इस सम्यक् ध्यान शतक को आद्योपान्त एक-एक अक्षर सह ध्यान से पढ़ा। मुझे महद् आनन्द आया जिसका वर्णन करना बहुत मुश्किल है। ध्यान के सम्बन्ध में इतनी अच्छी विवेचना पद्य रूप में प्रथम बार अध्ययन के लिए मिली। ध्यान के सम्बन्ध में यह विवेचना सहज ही बोधगम्य और आत्मसात् करने योग्य है।

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डक, ज्ञानार्णव, जैसे ग्रन्थागमों को आधार बनाकर आत्म-ध्यान जैसे विषय को सर्व स्तरीय पाठकों के लिए सरल पद्य के रूप में रचित किया है। वस्तुतः यह उत्तम कृति वास्तविक ध्यान के स्वरूप को समझने के लिए पर्याप्त है।

जिस प्रकार मंत्र संक्षिप्त होता है, परन्तु उसका प्रभाव असीमित होता है। उसी प्रकार इस कृति में वह सब कुछ आ गया है, जो ध्यान के सन्दर्भ में आज की आवश्यकता है। जैसे-

मंत्र-वाक्य का ध्यान हो, वीतराग शुभ रूप।
पदस्थ जानो ध्यान वह, हो एकाग्र स्वरूप।।
ओम् महा-यह-मंत्र है, परमेष्ठी का बीज।
द्वादशांग-सागर कहें, भवसुख, शिव की चीज।।

मुक्ति का मूल कारण आत्म-ध्यान ही है। वह एक सर्वमान्य तथ्य है। इसलिए प्रत्येक मुनि व श्रावक को ध्यान का स्वरूप समझना अत्यन्त आवश्यक है। यथा-

आतम में प्रकटें जहाँ, गुण अनन्त अभिराम।
सिद्ध बने परमात्मा, सिद्ध हुए सब काम।।

जैन मंदिरों में अरिहंत भगवान की जितनी प्रतिमाएं विराजमान हैं वे सभी ध्यान मुद्रा में ही हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि ध्यानावस्था ही धर्म परिणत अवस्था है। उत्कृष्ट ध्यानावस्था में वार्तालाप क्या; अन्तर्जल्प भी छूट जाता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि ध्यानावस्था समूचे संसार की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है।

जिनागम में ध्यान के चार भेद आर्त्त, रौद्र, धर्म व शुक्ल ध्यान रूप से कहे गये हैं। उनका विषय भी अनेकानेक प्राचीन ग्रन्थों में आचार्यों ने अति विस्तार के साथ लिखा है। इस विस्तार में से इस कृति में आध्यात्मिक उपयोगी अति आवश्यक विषय को आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ने पद्य रूप में समेटने का सफल प्रयास किया है।

इस कृति से ध्यान का मतलब तो समझ में आ ही जायेगा साथ ही साथ ध्यान के लिए जो तत्त्वज्ञान का अध्ययन अनिवार्य है,

वह भी स्पष्ट हो जायेगा।

जिस ध्यान से यह आत्मा-परमात्मा बनता है, उस ध्यान की चर्चा जैन आचार्य उमास्वामी कृत- तत्त्वार्थ सूत्र में इस प्रकार की गई है।

''**उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधोध्यान-मान्त-र्मुहूर्त्तात।**'' अर्थात् उत्तम संहनन वाले के अन्तर्मुहूर्त्त तक एकाग्र चिन्ता का निरोध-ध्यान होता है। यह ध्यान उत्तम संहनन वालों में ही होता है। जिस ध्यान से अष्ट कर्मों का विनाश होता है। जिससे मोह, राग/द्वेष का पूर्णतः अभाव होकर सर्वज्ञता प्राप्त होती है वह शुक्लध्यान है। जो आठवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है वह पहला शुक्लध्यान है। दूसरा शुक्लध्यान बारहवें गुणस्थान में होता है। तीसरा शुक्ल ध्यान तेरहवें गुणस्थान में होता है और चौथा शुक्ल-ध्यान चौदहवें गुणस्थान में होता है। पंचमकाल में शुक्लध्यान का सद्भाव नहीं है, लेकिन उत्कृष्ट धर्मध्यान तक आज भी पहुँच सकते हैं।

उक्त चार ध्यानों में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान तो संसार के कारण हैं और धर्मध्यान व शुक्लध्यान मुक्ति के कारण हैं। कवि ने कहा भी है-

अष्टापद, सम्मेद-गिरि, चम्पापुर, गिरिनार।
पावापुर को ध्याय जो, शीघ्र करे भव-पार।।
तीन-गुप्ति में लीन हो, मन, वच, तन को रोक।
करें ध्यान शिव-मोक्ष-पा, जन्म-मृत्यु ना शोक।।

जिनागम में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र रूप मुनि-मार्ग को समझे बिना धर्मध्यान संभव नहीं है। सामायिक एक ध्यान का ही रूप है। जो दिगम्बर परम्परा में व्रतधारियों में प्रचलित है। साधु-सन्तों के साथ व्रती श्रावक भी सामायिक करते हैं। अतः त्रिकाल सामायिक के रूप में सम्यक्-ध्यान को माना ही गया है। इस प्रकार आचार्यश्री ने ध्यान के संदर्भ में आचार्य जिनसेन के अनुसार बताया है कि ध्यान को पद्मासन/खड्गासन आदि में किया जा सकता है। शरीर की जो भी अवस्था ध्यान का विरोध उत्पन्न करने वाली न हो उस अवस्था में अपनी सुविधानुसार ध्यान किया जा सकता है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने सम्यक्-ध्यान शतक में बताया है कि-

सदा धर्म-मय भाव हो, आवश्यक में लीन।
धर्मध्यान तब साथ हो, वही भव्य स्वाधीन।।

धर्म-ध्यान रहित जीवन व्यर्थ है इसलिए बाल्यकाल से ही धर्म संस्कार पाते हुए सांसारिक बंधन से छुटकारा पाकर मोक्षमार्ग में चलते हुए वीतरागी, निर्मोही, निर्दोष साधु बनकर मोक्षसुख के लिए, आत्मिक, अक्षय और अनन्तसुख में लीन हो जाने का जो आचार्यश्री का भाव है उसके प्रति अपार आनन्द है। उनकी यह 'सम्यक् ध्यान शतक' हमारे लिए और पाठकों के लिए एक परम आशीर्वाद बने ऐसा मेरा अभिप्राय है।

आचार्यश्री द्वारा जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, नेक-जीवन, बचपन का संस्कार, धर्मभावना शतक, आर्जव-कविताएं, आर्जव-वाणी, जैनशासन का हृदय, आगम-अनुयोग, सदाचार सूक्ति काव्य, अध्यात्म समयोदय काव्य, गुरु गुण महिमा शतक तथा बारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधि-तन्त्र, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका और भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद इत्यादि पुस्तकें लिखी हैं। उन्हें भी मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसके लिए मैं अपना महान पुण्योदय मानता हूँ। परम पूज्य आचार्यश्री इसी प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा जिनवाणी की सेवा करते हुए धर्म एवं समाज को दिव्य साहित्यिक अवदान प्रदान कर संसार के भव्य प्राणियों को धर्म व मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते रहें, यही मेरी आन्तरिक भावना है। प.पू. आचार्यश्री के चरणों में सादर नमोस्तु।

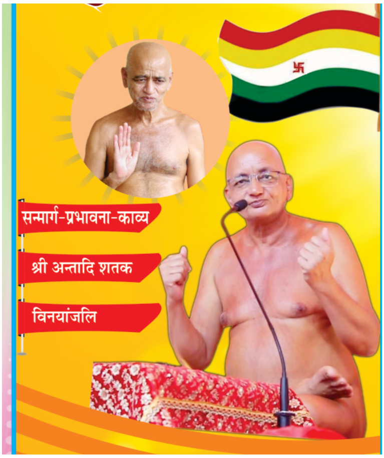

एक अनुपम कृति
सम्यक्-ध्यान-शतक

बाबूलाल सेठी जैन
M. Com., S.A.S., A.I.C.W.A., A.C.S.
अध्यक्ष- आरोग्य भारती जयपुर (राज.)

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज सदैव जिनागम के स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, लेखन या ध्यान साधना में रत रहते हैं।

संसार के दुःखों से मुक्त होकर जो अनन्त जीव सुखी हुए हैं वे ध्यान अवस्था में ही हुये हैं। हमारी जिन प्रतिमाएं भी ध्यानस्थ स्वरूप में ही होती हैं। जिनागम में ध्यान पर विपुल साहित्य है। वर्तमान युग में तो ध्यान; शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से ही बहुत प्रचारित विषय एवं प्रक्रिया है। ध्यान तो प्रत्येक मानव या जीव को प्रत्येक क्षण रहता है, परन्तु ध्यान के वास्तविक स्वरूप से जो शाश्वत सुख की प्राप्ति का कारण है उससे बहुत कम जीव परिचित हैं। इस सम्बन्ध में निम्न कथन दृष्टव्य है।

ध्यान-ध्यान सब जन कहें, ध्यान जाने न कोय।
ध्यान मर्म जाने बिना, ध्यान कहाँ से होय।।

उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री की आज के वातावरण में यह अनुपम कृति है। गद्य की अपेक्षा यह कृति पद्यबद्ध है। पद्य की विधा अधिक लोकप्रिय रहती है क्योंकि पद्य

को बारम्बार गुनगुनाने से वह अधिक प्रभावक रहता है। यह गागर में सागर की लोकोक्ति को चरितार्थ करती है। ध्यान की यह बड़ी सरल कुँजी है। सहज एवं सुबोध है। योग, ध्यान विषय पर मेरी रुचि को देखते हुए आचार्यश्री ने मुझे सम्यक्-ध्यान-शतक की एक स्व-हस्तलिखित प्रति उपलब्ध कराई। जिससे मुझे इसका आदि से अन्त तक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसे मैं पूर्व पुण्य कर्म का फल ही समझता हूँ।

इस कृति में 113 पद्य हैं। 113 अंक का भी अपना ही आध्यात्मिक महत्त्व है। एक अर्थात् आत्मा सो तेरा जो भेद विज्ञान का परिचायक है जो कि मोक्ष प्राप्ति में मूल कारण है। रचयिता स्वयं कहते हैं कि-

'एक सौ तेरह पद्य' हैं, ध्यान शतक में पूर्ण।
ध्यान करें निज एक सो, तेरा है सम्पूर्ण।।

इसमें धर्मध्यान के स्वरूप के अलावा धर्म से शान्ति का उपाय, भावनायें जो धर्म-ध्यान में सहायक हैं, मंत्र-विज्ञान, धारणाओं का सहज सरल स्वरूप, आर्त्त और रौद्र ध्यान जिनके छोड़ने पर ही धर्म-ध्यान होता है। ध्यान की पूर्व भूमिकाएं द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव इन्द्रिय-संयम (प्रत्याहार) आसन, आहार जिसकी ध्यान में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, वह भी है। जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। ध्यान की अन्तिम स्थिति शुक्ल-ध्यान है जो मोक्ष का साक्षात् कारण है। काव्य-कृति का बहुत ही सरल

भाषा में विवेचन किया गया है। कृति-रचना में क्षेत्र का भी प्रभाव रहता है। इस कृति की रचना आचार्यश्री ने गोपाचल सिद्ध क्षेत्र पर की है जहाँ से सुप्रतिष्ठित केवली ने निर्वाण प्राप्त किया था। प्रस्तुत कृति के निम्न पद्य विशेष रूप से चिन्तनीय हैं-

मन यह वानर-सम कहा, बड़ी चपलता मान।
ज्ञान, ध्यान में लीन जब, आत्म-शान्ति सुख जान।।
अक्ष-खिड़कियों से सदा, विषय-पवन का जोर।
अगर बंद हों खिड़कियाँ, निज-सुख की हो भोर।
मन पूरे जग में फिरे, एक जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान।।

आचार्यश्री आर्जवसागर जी इस अनुपम कृति के लिए अभिनन्दनीय हैं। उन्हें अन्तरंग से नमोस्तु तथा अन्तिम यही मंगल भावना है कि सर्व मुमुक्षु आर्त्त और रौद्र ध्यान छोड़कर मोक्षमार्ग के पथिक बनें विधिपूर्वक धर्म-ध्यान कर कर्मों की निर्जरा कर मोक्ष को पावें।

इससे पूर्व आचार्यश्री ने जिनागम के रहस्यों को एवं जीवन जीने की कला समझने के लिए सरल, सुबोध-भाषा में अनेक रचनायें भी की हैं, जिनमें जैनागम संस्कार, तीर्थोदय काव्य, आदि अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

आचार्यश्री के चरणों में नमोस्तु।

दस धर्मों का सार-धर्म भावना शतक

प्रा. नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद
संरक्षक-श्री भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्री परिषद्

किसी मनीषी की एक सूक्ति है – **'गुणवत्ता जगत्पूज्या, गुणी सर्वत्र मन्यते'** अर्थात्- संसार में गुण और गुणी की ही पूजा होती है। सभी लोग उसका आदर-सत्कार करते हैं। गुणहीन व्यक्ति को समाज में कभी अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता। अपने भीतर छिपे गुणों के विकास से ही कोई व्यक्ति एक श्रेष्ठ नागरिक बनकर राष्ट्र और समाज के वातावरण को सुखद बना सकता है। गुण आत्मा की निधि है। उन्हें किसी हाट या बाजार से नहीं खरीदा जा सकता। उन्हें पाने के लिए न तो धन की आवश्यकता है और न किसी अन्य सहारे की। गुणों के विकास की दृष्टि से हर जीव स्वाधीन है। सही श्रद्धा, सही समझ एवं सत्कार्यों से उनका विकास सहज ही होता रहता है। यदि कहा जाए कि गुणों के विकास का ही दूसरा नाम धर्म है तो इसमें किंचित् ही अत्युक्ति नहीं है।

हमारे धर्माचार्यों ने धर्म की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। उनमें से एक सर्वमान्य परिभाषा है – **'खमादि भावो हि दसविहो धम्मो'** अर्थात्- उत्तम क्षमादि दस प्रकार की भावनाओं को धर्म कहते हैं। इन दसविध भावनाओं से जैन कुल में जन्मा हर आबाल-वृद्ध भलीभाँति परिचित है। हर वर्ष भाद्रपद में मनाए जाने वाले पर्यूषण पर्व में सभी जैन नर-नारी इनका श्रवण एवं चिन्तन-मनन करते आ रहे हैं। दस लक्षणों से

समन्वित इस पर्व का नाम दसलक्षण पर्व भी प्रसिद्ध है। यह पर्यूषण गुण-पूजा का पर्व है। इसमें किसी व्यक्ति या घटना विशेष का स्मरण न करते हुए दुःख के मूल कारण अपने ही भीतर कुण्डली मारकर बैठे हुए कुसंस्कार-जनित खोटे भावों या विकारों को अलविदा करने या निकाल बाहर करने की कोशिश की जाती है। जितने भी विकार हैं, वे बाह्य पदार्थों या व्यक्तियों के संसर्ग से उत्पन्न होते हैं। चित्त में विकारों की उपस्थिति ही धर्म-पालन के मार्ग पर आगे बढ़ने में सबसे बड़ी बाधा है। विकारों से मानवीय गुणों के विकास की भावना तिरोहित होने लगती है। हमारे विकार ही हमारे दुःख का कारण है। जैनधर्म में विकारों से मुक्ति के दस उपाय-सहनशीलता, विनम्रता, सरलता, सन्तोष, सत्य, संयम, तप, त्याग, अनासक्ति और शील-बताये गये हैं। इन दस उपायों को अपने आचरण का अंग बनाने से यह जीव एक दिन निर्मल और निर्विकार हो जाता है। व्यवहारिक जीवन की सफलता भी इन्हीं के अनुपालन पर निर्भर है।

पर्यूषण पर्व इन दस गुणों की चर्चा और अर्चा का महापर्व है। भारत और भारत से बाहर जहाँ भी जैनों के चालीस या पचास घर क्यों न हों, वहाँ इस पर्व पर इन गुणों के बारे में जानने-समझने की उत्कृष्ट लालसा सभी श्रावक-श्राविकाओं में पायी जाती है। इस विषय पर अनेक सन्तों एवं विद्वानों ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इसी क्रम में युगनायक पूज्य आचार्य

श्री विद्यासागर जी महाराज के अनन्य एवं प्रिय शिष्य पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज की यह कृति लीक से हटकर है। इसकी एक विशेषता तो यह है कि यह पद्यवबद्ध है। गद्य की अपेक्षा पद्य की विधा जनसाधारण में अधिक लोकप्रिय है। गद्य में लिखे हुये विषय को तो एक बार पढ़ लिया और छुट्टी हुई, किन्तु पद्य को लोग बार-बार गाते और गुनगुनाते रहते हैं। इस कृति की दूसरी विशेषता यह है कि पूज्य श्री ने इसमें यथास्थान अनेक पौराणिक प्रसंग या उदाहरण देकर इसे सरस, हृदयग्राही एवं सुवाच्य बना दिया है। स्वाध्यायप्रेमियों के लिये तो यह कृति उपयोगी है ही, नवोदित विद्वानों को भी अपनी प्रवचन-कला को निखारने और प्रभावी बनाने में इससे सहायता मिलेगी।

पूज्य आचार्यश्री अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी संत हैं। निरन्तर स्वाध्याय, चिन्तन-मनन एवं लेखन उनके लिये उतना ही जरूरी है, जितना जरूरी है जीवित रहने के लिए श्वास लेना। सभी जीव अहित से बचें और स्वकल्याण में प्रवृत्त हों, उनकी इस प्रशस्त-भावना में ही उनकी इस सतत सृजनात्मकता का रहस्य छिपा है। ऐसे संत साधक की स्व-परहित की यह भव्य-भावना प्रणम्य है। इस कृति को लिखकर उन्होंने सुधी पाठकों पर अतीव उपकार किया है। इस कृति का जैन समाज में व्यापक रूप से स्वागत होगा, इसमें हमें संदेह नहीं।

'शुभमस्तु'

जैसा आदि, वैसा अंत : श्री अन्तादि शतक

-इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह
(B.E, M.A, Phd. संलग्न)

अंतादि अर्थात् अन्त+आदि। पद्य में जो शब्द अन्त में होता है वही शब्द अगले पद्य में प्रारंभ में प्रयोग होता है। ऐसा पद्यों का समावेश इस '**अन्तादि शतक**' में किया गया है।

आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित प्रथमाचार्य आचार्य गुरुदेव श्री 108 आर्जवसागरजी महाराज की लेखनी के माध्यम से रचित यह कृति '**अन्तादि शतक**' बड़ी ही रोचक है। यह अन्तादि शतक एक ऐसी रचना है जो अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। इस कृति की मुख्य विशेषता तो यह है कि इसमें प्रयोग होने वाले शब्द अनुभव परक शब्द है; जिन्हें गुरुदेव ने पद्यों में संजोकर दर्शित किया है। इस शतक में प्रत्येक पद्य में, अंत का जो अक्षर (शब्द) है उसी शब्द से अगले पद्य का प्रारंभ किया गया है।

सिद्धांत आगम के पारगामी संत, प्रवचन प्रभावक, कुशल काव्य शिल्पी, प्रभु महावीर के प्रतिबिंब, आध्यात्मिक संत, धर्म प्रभावक आचार्य गुरुदेव श्री आर्जवसागरजी महाराज के दर्शन कर; सम्प्रदाय मुक्त भक्त हो या दर्शक, पाठक हो या विचारक, आबाल-वृद्ध नर-नारी उनके बहुमुखी चुम्बकीय व्यक्तित्व-कृतित्व को आदर्श मानकर उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतार कर अपने आपको धन्य मानते हैं।

ज्ञान-ध्यान-तप के यज्ञ में आपने स्वयं को ऐसा आहूत किया कि आप अल्पकाल में ही हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, तमिल, कन्नड़, मराठी भाषा के ज्ञानी हो गये। आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रेरणादायक, युगप्रवर्तक अनेक काव्यों का सृजन करके साहित्य जगत में चमत्कार कर भव्यों को उपहार प्रदान किया है। आपकी स्वावलम्बी, निर्मोही, समता, सरलता, सहिष्णुता की पराकाष्ठा के जीवन्त दर्शन आपकी चर्या में साक्षात् नजर आते हैं। आपकी साधना-ज्ञान-ध्यान-चिन्तन आपकी मुनि मूरत के शिल्पी आचार्य गुरुदेव श्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा दिये गये नाम-पद 'आर्जवसागर' के सार्थक संज्ञा के पर्याय स्वरूप है। आपके दर्शन कर भव्य जीव को सहजता, सरलता की साक्षात् मूर्ति के दर्शन स्वमेव हो जाते हैं।

गुरुदेव श्री आर्जवसागर जी महाराज ने '**श्री अन्तादि शतक**' के अंतर्गत सर्वप्रथम पञ्च परमेष्ठी को मंगल स्वरूप मानकर मंगलाचरण किया है। इसके बाद मंगल का फल क्या है? उसे भी पद्य के माध्यम से समझाया है। इसी में जैनों का सदाचरण, उनकी सद्भावना, न्यायप्रियता, आदि की भी व्याख्या पद्य रूप में है। गुरुदेव ने इसी शतक में सम्यग्दर्शन की महिमा, मोक्ष में अनंत सुख, त्रिलोकी पूज्य सिद्धात्मा, आत्म स्वरूप, जीव-पुद्गल में भेद, सुख-दुःख, पुण्य-पाप, अनेकांत, स्याद्वाद, निश्चयनय-व्यवहारनय, लक्ष्य प्राप्ति, संयम, आचार, पुरुषार्थ, नियत-

अनियत, व्रत-शील आचरण, ध्यान, श्रद्धा, आदि एवं दस धर्मों का पद्य रूप विवेचन, कर्म-निर्जरा, खादी-खाकी में अंतर, शुद्धात्मा का स्वरूप, सिद्धों की आराधना, मोक्ष में अलौकिक सुख, आदि का वर्णन विशेष रूप श्री अंतादि शतक में पद्य के माध्यम से संजोया है।

यह '**अंतादि शतक**' कृति आचार्य भगवन्त गुरुदेव श्री आर्जवसागर जी महाराज द्वारा खनियांधाना में पूर्ण हुई। इस महान अनुपम कृति के कृतिकार के चरणों में अनन्तों बार नमोस्तु निवेदित कर अंत में चार पंक्तियाँ-

जग शोभित 'विद्यार्जव गुरु' हैं, भेष दिगम्बर ऋषिमुनि।
यति परमेष्ठी पंचाचारी, महाकवि गुरु साम्यधनी॥
धर्म-प्रभावक, समताधारी, आदर्शी गुरु आत्मरति।
प्रवचनकारी, सुशीलधारी, ज्ञानी योगी महाव्रती॥

आचार्यश्री जी के चरणों में कोटिशः नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु....

12/04/2024

चैत्र शुक्ला चतुर्थी

सम्यक्-ध्यान व ध्यान की प्रक्रिया

–आचार्यश्री आर्जवसागर जी

'ध्ये चिंतायाम्' धातु से ध्यान शब्द निष्पन्न होता है। जो चिंतवन, मनन करने के अर्थ में है। तत्त्वार्थसूत्र में एकाग्र चिंता निरोध के सूत्र में एक का अर्थ केवल अर्थात् आत्मा और अग्र पद का अर्थ मुख है जो एक अग्र होता है वह एकाग्र है। निरोध का अर्थ नियंत्रण या रोकना कहलाता है। अन्य पदार्थ में अमुख अर्थात् हटकर या निर्वृत्त होकर एक आत्म पदार्थ में चिंतवन का स्थिर रहना सम्यक्-ध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान रूपी उत्कृष्ट ध्यान की अपेक्षा अग्र का अर्थ प्रथम या मुख्य होता है। जिससे ध्याता को सभी पदार्थों में अपनी आत्मा ही मुख्य होती है और तत्त्वों में अग्रण्य होने से भी अग्र शब्द से आत्मा का स्मरण किया गया है। तो केवल आत्मा के ध्यान में चित्त-वृत्ति का नियंत्रण होना उत्तम-ध्यान है।

संसार में जीव कर्म से बध्य होकर अनादिकाल से चतुर्गति-परिभ्रमण कर रहा है। वह जीव जब वीतरागी देवाधिदेव अरिहन्त भगवान, निर्ग्रंथ-गुरु और समीचीन शास्त्र को निमित्त बनाकर इन पर अगाढ़ भक्ति धारण कर और इनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर अटूट श्रद्धा धारण कर आत्मा के सच्चे स्वरूप को पहचान कर उसकी श्रद्धा करके निर्ग्रन्थ बन उसी में लीन होता है तो संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मुक्ति के साधन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र

हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीव में अजीव रूप कर्म का आना आश्रव है और कर्म का जीव के साथ बँध जाना बंध है। ये आश्रव, बन्ध ही संसार के प्रधान कारण हैं और संसार के अभाव रूप मोक्ष के प्रधान कारण संवर और निर्जरा हैं। कर्मों के रुकने रूप संवर और कर्मों के क्षय होने रूप निर्जरा की प्रधान कारण सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं और सम्यक्चारित्र में तप भी गर्भित है और तप बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। अभ्यन्तर तप के भेदों में एक भेद ध्यान है। तत्त्वार्थ सूत्र में '**आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि**' सूत्र के द्वारा ध्यान चार प्रकार का बतलाया गया है। अगले सूत्र में '**परे मोक्ष हेतु**' अर्थात् बाद वाले धर्म, और शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं। एतदर्थ पारिशेष न्याय से '**पूर्वे संसार हेतु**' अर्थात् पूर्व कथित जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे संसार के कारण हैं स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। इसी कथन से यह भी अर्थ स्पष्ट होता है कि जो साक्षात् और परम्परा से क्रमशः मोक्ष के कारण रूप धर्म और शुक्लध्यान हैं वे शुभ रूप ध्यान हैं और संसार के कारण रूप जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे अशुभ रूप ध्यान हैं। यदि कदाचित् कोई भव्य कहे कि मुझे ध्यान का अभ्यास करना है; तो कहा जावेगा कि संसार के प्रत्येक प्राणी को अशुभ ध्यानों का अभ्यास तो अनादिकाल से चल ही रहा है, परन्तु शुभ-ध्यानों के लिए विशिष्ट पुरुषार्थ रूप सम्यग्दर्शन पूर्वक ज्ञान, चारित्र अथवा

संवर, निर्जरा के साधन रूप गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय और चारित्र की अनिवार्यता होती है।

परिग्रहवान मोही संसार के सर्व प्राणी चिंताओं में उलझे हुये हैं। जिनके हिय में आकुलता-व्याकुलतामय परिणामों से आर्त्त, रौद्र ध्यानों की निरन्तरता बनी रहती है और जब तक तत्त्व-चिंतन के साथ धर्मध्यान नहीं होता तब तक चित्त-वृत्ति के निरोध के साथ समीचीन अर्थात् सम्यक्ध्यान सम्भव नहीं है। समाधि-तन्त्र में कहा है कि-जिस ध्यानी साधक का मन रूपी जल राग-द्वेष आदि लहरों से चंचल (चलायमान) नहीं होता वही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को देखता है। अन्य जन उस आत्म-तत्त्व का दर्श नहीं कर सकते।

रागद्वेषादि कल्लोलै रलौलं यन्मनो जलं।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत् तत्त्वं नेतरो जनः ॥

– समाधितन्त्र (35)

कितने ही दार्शनिक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठों को योग का अंग मानते हैं और कोई दार्शनिक यम, नियम को छोड़कर मात्र छह को योग का अंग मानते हैं। शुभचन्द्राचार्य ने कहा है कि उत्साह, निश्चय, धैर्य, संतोष, तत्त्व-निर्णय और जनपद त्याग इन छः से मुनि को योगों की सिद्धि होती है। और भी कहा है कि गुरु - उपदेश, उपदेश पर भक्ति, दृढ़ श्रद्धा, तत्त्व चिंतन और मन की

स्थिरता ये सम्यक्-ध्यान के पंच प्रधान साधन हैं। योग के अष्ठ अंगों का समीचीन अर्थ ध्यातव्य है कि –

1. यम :- अहिंसादि व्रतों का जीवन पर्यन्त धारण करना यम है।

2. नियम :- देवपूजा आदि नियत कालिक षट्-कर्म और नियत कालिक भोगोपभोग-परिमाण का नियमन करना नियम है।

3. आसन :- निश्चल और दृढ़ आसन जैसे-पद्मासन, अर्ध पद्मासन, खड्गासन इत्यादिक को आसन माना जाता है। ज्ञातव्य रहे कि आसनों के साथ खड्गासन में खड़े व्यक्ति के पैरों की एड़ियों के बीच चार अंगुल का अंतर हो और दोनों अंगूठों के बीच कम-से-कम चार या अधिक-से-अधिक बारह अंगुल का अन्तर हो। पद्मासन में बैठते समय पहले बायाँ फिर दायाँ पैर जंघा पर हो तथा दोनों पञ्जों के बीच हाथ पर हाथ रखते हुए बाँया फिर दाहिना हाथ हो। रीढ़ और मुख सीधा, दृष्टि (नजर) नाशाग्र की सीध में दूर जाती हो।

4. प्राणायाम :- पूरक, कुम्भक और रेचक इनके द्वारा वायु के संचार से प्राणायाम किया जाता है। वायु का अन्दर ग्रहण पूरक है। वायु का उदर में धारण कुम्भक और बहिर्गमन रेचक कहलाता है।

5. प्रत्याहार :- भोग विषयों से चित्त का निरोध हो जाने पर इन्द्रियों

को अपने वश में करके जो स्वाधीन अवस्था की प्राप्ति करना प्रत्याहार कहलाता है।

6. धारणा :- चित्त को नाभिमण्डल, हृदय-कमल, ओष्ठ, नासिका, ललाट और सिर आदि में अथवा पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्त्व-धारणा का आलम्बन लेकर एकाग्रता में लीन होकर निराकुल अवस्था को प्राप्त करना धारणा कहलाता है।

7. ध्यान :- एक ही तत्त्व में स्थिरता पूर्वक जो चिंतन किया जाता है उसका नाम ध्यान है।

8. समाधि :- जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय इन विकल्पों से रहित आत्म-तल्लीनता रूप शून्य के समान अर्थ प्रतिभास रूप अवस्था आती है उसे निर्विकल्प- समाधि कहा जाता है।

जैन-दर्शन में जिसे निर्ग्रन्थों के जीवन में निर्विकल्प-समाधि कहा जाता है। उसे शुद्धोपयोग की उत्कृष्ट अवस्था में शुक्ल-ध्यान रूप से इंगित किया जाता है।

विद्वानों ने धर्म-ध्यान के पश्चात् प्राणायाम की व्याख्या करते हुए प्रथमतः यह निर्देशित किया गया है कि अपने सिद्धान्त का भले प्रकार निर्णय कर लेने वाले मुनियों ने ध्यान की सिद्धि के निमित्त मन की स्थिरता के लिए प्राणायाम की प्रशंसा की है। इसलिए बुद्धिमान भव्य जनों को उसे प्राप्त करना चाहिए क्योंकि इसके

बिना मन पर विजय प्राप्त करना शक्य नहीं है। आचार्यों ने प्रत्याहार के लिए समाधि सिद्धि हेतु नियामक रूप से प्रशंसनीय बतलाया है। ज्ञानार्णव शास्त्र में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं कि -

निःसंगः संवृतस्वान्तः कूर्मवृत्संवृतेन्द्रियः।
यमी समत्वमापन्नो ध्यानतन्त्रे स्थिरी भवेत्॥ 1457॥

अर्थात् जो मुनि परिग्रह से निर्ममत्व हो चुका है जिसका मन सावद्य प्रवृत्ति से रहित है। तथा जिसकी इन्द्रियाँ कछुए के समान संकुचित हैं व स्वाधीन हो चुकी हैं वह समता-भाव को प्राप्त होता हुआ ध्यान की सिद्धि में दृढ़ होता है। तदुपरान्त प्रत्याहार की महिमा प्राप्त आत्मा के लिए प्राणायाम की आवश्यकता नहीं क्योंकि प्राणायाम से अपने प्राण या शरीर बाधित होते हैं।

सम्यक् समाधि सिद्ध्यर्थं, प्रत्याहारः प्रशस्यते।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मनः स्वास्थ्यं न विन्दति॥ 1459॥
पूरणे, कुम्भने चैव तथा श्ववसननिर्गमे।
व्याग्रीभवन्ति चेतोसि क्लिश्यमानानि वायुभिः ॥ 1465॥

- ज्ञानार्णव (1465)

अर्थात् प्राणायाम को अस्वास्थ-कर कष्टप्रद व मुक्ति की प्राप्ति में बाधक कहा गया है। ध्यान का अधिकारी कौन होता है? इसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि -

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
निर्ममत्वं यदि प्राप्तस्तदा ध्यातासि नान्यथा॥ 269॥

– ज्ञानार्णव (269)

अर्थात् यदि तू कामभोगों से विरक्त होकर शरीर के विषय में निस्पृह होता हुआ निर्ममता को प्राप्त हो चुका है तो ध्यान का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं।

सम्यक्ध्यान की प्रसिद्धि हेतु सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का होना अनिवार्य है।

सुयोग्य द्रव्य :-भव्य आत्मा स्वयं ही आधार, ध्याता और साध्य रूप जीव द्रव्य कहलाता है। स्वस्थ शरीर, श्रेष्ठ-संहनन, पद्मासन, सिद्धासन, खड्गासन आदि आसन और सात्विक, शुद्ध, प्रासुक आहार ये सब अजीव द्रव्य कहलाते हैं।

सुयोग्य क्षेत्र :- आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि –

एकान्ते सामायिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषू च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया॥ 99॥

– रत्नकरण्डक(99)

अर्थात् एकान्त क्षेत्र जो कि बाधारहित (कोलाहल, सांसारिक विषयों से रहित) वन, गृह या चैत्यालय रूप हो ऐसे क्षेत्र पर प्रसन्न चित्त के साथ सामायिक बढ़ाना चाहिए। क्योंकि इसके बिना ध्यानाभ्यास का होना प्रायः असम्भव होगा। परन्तु सुदर्शन मुनीश्वरादि जैसी अभ्यस्त आत्माएँ किसी भी बाधित स्थल में भी ध्यान लीनता को प्राप्त कर सकती हैं।

सुयोग्य काल :-संध्या या सन्धिकाल जिसमें सुषुम्णा नाड़ी (सूर्य

और चन्द्र दोनों स्वर रूप) चले ऐसा सुबह, मध्यान्ह और सायं काल ध्यान के लिए उपयुक्त काल समझना चाहिए। ऐसे काल में ध्यान की एकाग्रता व समता रूप सामायिक सहजता से वृद्धि को प्राप्त होती है।

सुयोग्य भावः-**''समता सर्व भूतेषु, संयमे शुभ भावना।**
आर्त्त, रौद्र परित्यागस् तद्धि सामायिकं मतं॥''

अर्थात् सब जीवों में राग-द्वेष रहित साम्य-परिणामों का होना, संयम-मय अर्थात् प्राणियों की रक्षा करते हुए 25, 16 आदि सत्तर प्रकार की भावनाएँ चिन्तवन में लाना और आर्त्त तथा रौद्र ध्यानों का विसर्जन (त्याग) करना; साथ ही आज्ञा-विचय, अपाय-विचय, विपाक-विचय और संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान का चिंतवन-मन्थन अपनी आत्मा में करते हुए एकाग्रता को प्राप्त कर लेना सुयोग्य भाव कहलाता है।

आत्मा में अनादि काल से विषय-कषायों के पनाले बह रहे हैं जिनकी वासना से मन को स्थिर बनाना और धर्मध्यान की ओर आकृष्ट करना प्रत्येक आत्मा के वश की बात नहीं है लेकिन जो व्यक्ति वानर जैसे चंचल जीवन या मन रूपी भूत को दान, पूजादिक धार्मिक कार्यों में अनुरक्त करता है और कोई विशेष

भव्य-आत्मा पंचेन्द्रियों के झरोखों से आने वाले इन्द्रिय-भोग-विषयों की वायु को रोककर कछुये के सदृश अपने इंद्रिय व्यापार को विराम देकर यम, नियम, आसन आदि के साथ सुयोग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के साथ ध्यान में लीन होता है तब वह निस्तरंग जल में मुख दिखने के सदृश अपनी आत्मा में अपनी आत्मा का दर्शन करने लग जाता है।

सारे जगत् में भागते मन से न तो ध्यान हो सकता है और न ही कर्म रूपी ईंधन को जलाया जा सकता है। परिग्रह के ममत्व से ध्यान की ऊर्जा बहिर्गामिनी होती है। काम-वासना से ऊर्जा अधोगामिनी होती है और सम्यक् ध्यान से ऊर्जा ऊर्ध्वगामिनी होती है। जगत् की ओर भागने वाली अनेकाग्र-ऊर्जा ने आज तक हमारे अष्ट कर्मों को नहीं जला पाया जैसे कि सूर्य की किरणें सभी ओर फैल रही हों तो भारी गर्मी में भी धूप में पड़े कागज को वे नहीं जला पातीं लेकिन जब दूरबीन (लैन्स) से किरणों को केन्द्रित करके एक स्थान पर छोड़ते हैं तो कागज जल उठता है वैसे ही एकाग्रतारूप सम्यक् (समीचीन) शुक्ल-ध्यान से कर्मों रूपी ईंधन जल जाता है और यति आत्मा केवलज्ञानी परमात्मा व सिद्ध बन मोक्ष-अवस्था पाकर अनन्त काल के लिए अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुखादि गुणों से सम्पन्न हो लोक-शिखर पर विराजमान हो जाती है।

आत्मोद्धार-शतक

(आत्मानुशासन ग्रंथ पर आधारित
वैराग्यप्रद काव्य)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

आत्मोद्धार-शतक

- मंगलाचरण
- कटुवचन औषधि सम
- पहले तौलें फिर बोलें
- वक्ता का लक्षण
- वक्ता के गुण
- सच्चा श्रोता कौन?
- धर्माचरण की शिक्षा
- ज्ञान-सह चारित्र शोभनीय
- सम्यग्दर्शन का लक्षण व भेद
- सम्यग्दर्शन सह पूज्यता
- अणुव्रत की प्रेरणा
- सुखकारक व दुःखहारक; धर्म
- धर्म-रक्षा से उन्नति
- धर्मात्मा को धर्म से लाभ
- पुण्य-कोष कैसे भरें?
- धर्म से मोक्ष सुख
- आत्म-परिणाम ही पुण्य-पाप में कारण
- विषय-सुखों सह धर्मोपार्जन असंभव
- धर्म के घात से पापार्जन
- हिंसादि पापों से महापाप का अर्जन
- धर्म न करने का फल
- पुण्य-कार्य ही सर्वोत्तम
- उपसर्गों में भी धर्मी की रक्षा
- सत्पुरुषों का पुरुषार्थ
- साधु-परमेष्ठी के त्याग व तप
- संसारी प्राणी की मूर्खता
- विषयों में लिप्त प्राणी की व्यथा
- वास्तविक-शांति का उपाय
- विषयों में रमकर निज को ठगा
- विषयों में न रमने की शिक्षा
- मलिन तन का स्वरूप
- सुख प्राप्ति का उपाय
- मोह जाल तज; शिवसुख गहो
- क्षणभंगुर, नश्वर अस्थिर संपदा
- रत्नत्रय से मोक्ष प्राप्ति
- जग में सर्व सुखी कौन?
- परिषह विजयी मुनि, सर्वसुखी
- मुनियों के प्रशंसनीय गुण
- मुनियों की त्याग तपस्या
- तप से निर्जरा व मोक्ष
- कुटुम्बी जन हितकारी नहीं
- क्षणभंगुर आयु
- मोक्ष कैसे मिलता है?
- शील से रक्षा की प्रेरणा
- दुःख से पूरित मानव जीवन
- संसार की परिभाषा
- जो आज तक नहीं पाया वही है धर्म
- परिजनों का वियोग अवश्य
- स्वार्थी-संसार में स्वार्थी-जन
- मन-शांति का उपाय
- दुर्गति- दुःख का कारण
- स्व-स्व कर्मों से भव भ्रमण
- दुःख का मुख्य कारण
- बाल-पने आदि की व्यस्तताएँ
- निर्ग्रंथ मुद्रा की सार्थकता
- बुढ़ापे में धर्म की दुर्लभता
- संयम के योग्य; युवावस्था
- सम्यग्दर्शन का फल

- श्रेष्ठ निर्जरा का उपाय
- योग्य विवाह का उद्देश्य
- अब्रह्म से दुर्गति
- पतिव्रता नारी ही श्रेष्ठ
- मनुष्यायु को देवता भी तरसते हैं
- अमूल्य जीवन का दुरुपयोग
- संयम–धारण का फल
- संयमधारी व असंयमी के मरण
- संयमधारी की महिमा
- जितना छोड़ोगे, उतना पाओगे
- दुर्लभ है मानव तन पाना
- वीतराग–धर्म तज; सराग पूजक अज्ञानी
- सर्वज्ञ के वचन
- गृह–लक्ष्मी से पवित्र; गृह
- गृह–बर्बादी का कारण
- पुण्य के अयोग्यः– दुष्कुलीन जन
- दुष्कुलीन का लक्षण
- दीक्षा का धारक कौन?
- वीतरागता रहे कायम
- पुण्य वृद्धि का उपाय
- मिथ्यात्वपने का उदाहरण
- निज–आत्मा का दर्शन
- वीतरागता व सरागता
- प्रभु दर्शन से आत्म–विशुद्धि
- विषयों से विरक्त–मुनि
- पर से; निज का ध्यान
- पुण्य–पाप का खेल
- नरकगामी कौन?
- स्त्री का बीभत्व स्वरूप
- भ्रूण–हत्या महापाप है
- धर्म की सफलता कब?
- महादुःखों का दाता कौन?
- नारी की दुर्गति; कैसे?
- व्रत–भंगी की तुलना
- व्रत लेने उत्साही कौन?
- सन्मार्ग–प्रदाता; गुरु की महिमा
- जैसा हो अन्न, वैसा हो मन
- जीवन को हानिकारक; फास्टफूड
- नारी का सफल जीवन
- नारी को संदेश
- विनयाचारी का स्वरूप
- दुर्भागी की हानि
- संतानों से संतति
- स्वर्गों का सुख किसे?
- पाप–वचन से मौन–मुनि
- ध्यानस्थ मुनि की छवि
- भेद–विज्ञान का चिंतन
- ध्यान की प्रेरणा
- मोक्ष–सुख की भावना
- प्रशस्ति
- गागर में सागर समाया
- रचयिता की आन्तरिक भावना
- कृति रचाने का सुअवसर
- कृति रचना का समय

मंगलाचरण

आत्मज्ञान से निज–अनुशासक, ध्यानी, पाप–विनाशक हैं।
वर्द्धमान तीर्थंकर भगवन्, भविजन सभी उपासक हैं॥
वीतराग–गुण–पाने नमता, हो कल्याण जगज्जन का।
आत्मोद्धार–शतक लिखता हूँ, कष्ट मिटे सबजन–जन का॥ 1॥

(कटुवचन औषधि–सम)

महारोग–मय दुख से डरकर, सुख ही जग–जन चाह सदा।
शुभ–भावन यह लखकर मैं भी, देता शिक्षा, पढ़ो सदा॥
कटु–औषध ज्यों व्याधि हरे व, रोगी–तन को स्वस्थ करे।
वैसे ही कटु–वच, तप आदिक, जन्म–जन्म के कष्ट हरें॥ 2॥

(पहले तौलें फिर बोलें)

मेघ–गर्जना–सम गरजें जो, बहुत बोलने वाले–जन।
नहीं सार है उन–वचनों में, गरजें–जन, न वरसें–जन॥
गरजें कम व सघन बरसते; उनकी कीमत होती है।
उद्धारक–सीमित वचनों की, शोभा जग में होती है॥ 3॥

(वक्ता का लक्षण)

आगम–ज्ञानी, लोकानुभवि, होवे, ख्याति–चाह नहीं।
प्रतिभा–सह हो, सहनशीलता, समाधान निज–काम वहीं॥
प्रश्न–सहे, स्वामी, मन–हरता, भक्त–गणों का गुण–धामी।
शिष्ट, मिष्ट–भाषी वक्ता जो, कथा करे नित शुभ नामी॥ 4॥

(वक्ता के गुण)

श्रुत-ज्ञाता हो, चरित-शुद्ध हो, शुद्ध-चरित-परिचायक हो।
रत्नत्रय का उपदेशक हो, विज्ञ, पूज्य, मुनि-नायक हो॥
लोक-विज्ञ, अभिमान रहित हो, भोग-रहित निज-ध्यायक हो।
शुद्ध-देश व कुल से उत्तम, भव्यों का उद्धारक हो॥ 5॥

(सच्चा श्रोता कौन?)

मुक्ति-योग्य भवि मेरा हित क्या,-कहाँ निहित सुविचार करे।
भव-दुःख से वह डरे निरन्तर, शाश्वत-सुख का भाव रखे॥
श्रवणपने के योग्य गुणों-सह, विचार-युत, निर्णयकारी।
धर्मी बन वह, हठ-धर्मी न, श्रोता; श्रुत का अधिकारी॥ 6॥

(धर्माचरण की शिक्षा)

हिंसादिक पापों से दुख हो, धर्म अहिंसा सुख देता।
न जाने कि कौन विश्व में, -पाले, जो सुख पा लेता॥
अतः सौख्य-चहेता निश-दिन, पाप छोड़ना यत्न करे।
धर्म-आचरण पाले, गुरु से, -आशी-पाता सौख्य वरे॥ 7॥

(ज्ञान-सह चारित्र शोभनीय)

शीघ्र सौख्य उत्तम चाहे तो, कर्म-शत्रु का नाश करे।
कर्म-क्षयार्थी चारित गहता, जो संज्ञान-सु साथ रहे॥
सम्यग्ज्ञान जिनागम से हो, आगम-कर्त्ता निर्दोषी।
जग-सुखकर्त्ता, शिव वरते जिन, समझ, शरण-गह संतोषी॥ 8॥

(सम्यग्दर्शन का लक्षण व भेद)

समीचीन वह ज्ञान बने जब, सम्यग्दर्शन साथ रहे।
नव-पदार्थ व सप्त-तत्त्व में, श्रद्धानी परमार्थ रहे॥

द्वि, त्रि, दस विध सम्यग्दर्शन, मूढ़ादि से रहित रहे।
त्रि-अज्ञान व भव-नाशक शिव, -मंजिल का सोपान रहे॥ 9॥

(सम्यग्दर्शन सह पूज्यता)

समदर्शन बिन, नर धरता सम, कषाय, श्रुतरति, व्रत-पालन।
अनशनादि तप को तपता तब, ना होता विधि-प्रक्षालन॥
उपल-समा वे भार-युक्त हैं, क्योंकि दर्शन-युक्त नहीं।
समदर्शन हो तभी तपादिक, मणि-सम हों, दें मोक्ष मही॥ 10॥

(अणुव्रत की प्रेरणा)

विषय-विषम जु भोज्य से प्रकटित, चरित-मोह के ज्वर के साथ।
विषयाशा की तीव्र-प्यास से, क्षीण-शक्ति है जिसके साथ॥
ऐसा रोगी मुनि-व्रत रूपी, गरिष्ठ-भोज्य न कर पाये।
उसे प्राथमिक-दशा रूप में, तरल हि गृहि-व्रत बतलाये॥ 11॥

(सुखकारक व दुःखहारक; धर्म)

भव में प्राणी सुख का अनुभव, या दुख का अनुभव करता।
उसे धर्म ही योग्य रहा है, पाले, नित हो तत्परता॥
सुखी-जनों का सौख्य-बढ़ाये, दुखियों का दुख हर लेता।
धर्म कभी न व्यर्थ रहा है, धर्मी कष्टों का जेता॥ 12॥

(धर्म-रक्षा से उन्नति)

सर्व-इन्द्रियों के ये सुख जो, धर्मोद्यानज फल जानो।
अतः भले-साधनों द्वारा, कर तरु-रक्षा, हित मानो॥
धर्म-वृक्ष की रहे सुरक्षा, पुण्य बढ़ेगा निश्चित ही।
सुख के साधन, धर्म के साधन, खूब मिलेंगे नित-नित ही॥ 13॥

(धर्मात्मा को धर्म से लाभ)

धर्म; मोक्ष का कारण होता, ना सुख में बाधक होता।
ना भयकर भवि, विमुख ही होना, परभव तक साधक होता।
जब तक मोक्ष मिले ना भवि को, साथ जिनेश्वर-धर्म रहे।
धर्म-भाव, भव-पार लगावे, अन्तिम भवि शिव-शर्म लहे॥ 14॥

(पुण्य-कोष कैसे भरें?)

किसान वह जब धान्य पाय तो, प्रथम-बीज-रक्षित करता।
शेष-भोगता बुद्धिवन्त वह, सुयोग्य-मय फिर कृषि करता।
उसी तरह भवि पुण्य-सुरक्षित, धर्म-कार्य से नित करता।
नहीं पुण्य-फल-द्रव्यादिक को, पूर्ण-भोग, व्रत है धरता॥ 15॥

(धर्म से मोक्ष-सुख)

याचक को जब कल्पवृक्ष वह, फल देता उत्तम-उत्तम।
चिन्तवन से वह चिन्तामणि भी, फल देता है सर्वोत्तम॥
किन्तु याचना, चिन्तन के बिन, अक्षय मोक्ष-सौख्य देता।
ऐसा रहा धर्म मित्र-सम, भवि अशेष सुख पा लेता॥ 16॥

(आत्म-परिणाम ही पुण्य, पाप में कारण)

पुण्य, पाप का कारण जानो, निज-परिणाम हि जीवन में।
प्रभु कहते हैं पाप-नशाओ, पुण्य-भाव हो, नित मन में॥
नियम-व्रतों में तत्परता हो, पाप-निर्जरा होती है।
पुण्य-कोस भी पूरित होता, भाव-शुद्धि नित होती है॥ 17॥

(विषय-सुखों-सह धर्मोपार्जन असंभव)

मोह-वशी वह, धर्म-नाश कर, इन्द्रिय-सुख का भोग करे।
पापी जड़ से वृक्ष-नाश कर, फल पाने उद्योग करे॥

ऐसा समुचित नहीं कदापि, किसी धर्म में माना है।
मन-वच-तन, कृत-कारित-मोदन, से सुधर्म-सुख जाना है॥ 18 ॥

(धर्म के घात से पापार्जन)

जिसके मन में धर्म रहा हो, मृत्यु का भी स्वागत हो।
क्षमा-भाव रख सहनशीलता, दया शांति का धारक हो॥
धर्म-भाव गर गया मनस् से, पिता पुत्र न रक्षक हों।
पुत्र पिता की, पिता पुत्र की, कर हिंसा, वे भक्षक हों॥ 19 ॥

(हिंसादि पापों से महापाप का अर्जन)

अक्ष-सुखों का भोग मात्र न, हिंसादिक जो पाप करे।
पापास्रव से बंध पाप का, -होता वह अभिशाप रहे॥
मात्र भोज्य वह अजीर्ण ना हो, गर मात्रा प्रतिकूल रहे।
असमय में भी अशन करे तो, अपच आदि का मूल रहे॥ 20 ॥

(धर्म न करने का फल)

हिंसादिक प्रत्यक्ष रूप से, दुख के कारण कहलाते।
अतिशयकारी उभय-लोक में, दुःख दें, लगते सुख लाते॥
लोक-सुखी उन धीमानों ने, जिसका पालन सदा किया।
पर-भव में भी परोपकारी, क्यों नहिं तुमने धर्म किया॥ 21 ॥

(पुण्य-कार्य ही सर्वोत्तम)

हिंसक-प्राणी निरपराधि उन, मृग आदिक का हनन करे।
अन्य जन्तु-घातक वह प्राणी, उभय-लोक-दुख वहन करे॥
निंदा, दैन्य व मान, चौर्य तज, झूठ आदि परिहार करो।
यश, सुख, धर्म-प्रयोजन कारक, पुण्य-कार्य स्वीकार करो॥ 22 ॥

(उपसर्गों में भी धर्मी की रक्षा)

पुण्य-कर्म को करो निरन्तर, पुण्यवान रक्षित होता।
बड़े-बड़े उपसर्ग-उपद्रव, -आयें तो ना च्युत होता॥
पार्श्वनाथ को हुए उपद्रव, विभूति-बढ़ने में कारण।
यथा सूर्य वह कमलों को जहँ, विकसित होने में साधन॥ 23॥

(सत्पुरुषों का पुरुषार्थ)

रावण का पुरुषार्थ व्यर्थ था, जहाँ पुण्य का योग नहीं।
जहाँ धर्म हो पुण्य वहीं हो, पुण्य रहे तो विजय वहीं॥
राम रहे थे पुण्यवान वे, न्याय-नीति का साथ लिया।
जंगल में भी धर्म-निष्ठ थे, मुनियों को आहार दिया॥ 24॥

(साधु-परमेष्ठी के त्याग व तप)

पालन करते परम्परा का, नग्न-दिगम्बर धारक हैं।
अचल-मेरु-सम अडिग व्रतों में, भविजन के उद्धारक हैं॥
उदधि-समा वे धन-आशा बिन, रत्नत्रय से भरे हुए।
नभ-सम निर्मल अमित-अनुभवि, शांति-सुधा में रमे हुए॥ 25॥

(संसारी प्राणी की मूर्खता)

मोह-वशी, न पिता भ्रात को, -छोड़े, छलता दुख पाता।
धन,विषयों के अल्प-सुखों में, अपने-पन को विसराता॥
मृत्यु-दाढ़ के बीच पड़ा वह, मूर्ख सदा ही दुखी रहे।
तन जु अनन्तों बार नष्ट हो, यम के अगणित कष्ट सहे॥ 26॥

(विषयों में लिप्त प्राणी की व्यथा)

अंधों में भी महा-अंध वह, विषय-अंध है कहलाता।
चर्म-चक्षु से अंध मात्र वह, नेत्रों से ना लख पाता॥

लेकिन मोही विषयांधी वह, किसी तरह ना लख पाता।
पाप–रूप चोरों से ठगकर, दुर्गतियों का दुख पाता॥ 27॥

(वास्तविक–शांति का उपाय)

आशा–रूपी गर्त महा है, तीन–लोक जहँ अणु–सम हो।
कैसे गर्त भरे वह पूरा, आशा–वृद्धि हि हर–दम हो॥
जहाँ विषय–तृष्णा बढ़ती है, वहाँ अशांति नित्य रहे।
विषय–त्यागकर आशा–छोड़े, वहाँ शांति फिर नित्य रहे॥ 28॥

(विषयों में रमकर निज को ठगा)

दुःखदायी उन कटु–विषयों में, कहाँ कौन–सा स्वाद रहा।
जिस कारण अज्ञानी तूने, अमृत–मानकर सौख्य कहा॥
स्वाभिमान के अमृत को जब, मलिन विषय में कर डाला।
पागल बन विषयों के विष को, पीकर निज को ठग डाला॥ 29॥

(विषयों में न रमने की शिक्षा)

साथ रहा है सदा देह का, जीवातम को भव–भव में।
दुष्कर्मों का वेदन भी नित, रहा दुखद् इस जग–भव में॥
मन–वच–तन की क्रिया–कर्म को, सदा बँधाती जीवन में।
अहो! मृत्यु से भय भी लगता, फिर क्यों रमता विषयन में॥ 30॥

(मलिन–तन का स्वरूप)

तन–काराग्रह–सम कहलाता, हाड़, नशों से बना हुआ।
ढका हुआ है चर्म–आवरण, रुधरादि से लिपा हुआ॥
कर्म–शत्रु की निगरानी में, आयु–सांकलों का बंधन।
ऐसे कारागृह से प्रीति, –क्यों? जहँ होता हो क्रन्दन॥ 31॥

(सुख-प्राप्ति का उपाय)

ना वह गृह रक्षक है तेरा, राग-द्वेष का कारण है।
स्त्री का वह राग अशुभ नित, कर्म-बंध का साधन है॥
आपद्-समा व शत्रु रूप वे, बनें सुतादिक पहचानो।
संयोगज सब पदार्थ तजकर, व्रत, संयम में सुख मानो॥ 32॥

(मोक्ष-जाल तज; शिवसुख गहो)

ईंधन व तृष्णा-अग्नि-सम, क्या धन से वह अर्थ रहा।
पाप-हेतु उन परिजन से भी, नाता सारा व्यर्थ रहा॥
सर्प-बिलों-सम तन-गृह दुख-मय, नहीं सौख्य देने वाला।
अरे सखे! तज मोह-जाल फिर, गहो धर्म शिव-सुख वाला॥ 33॥

(क्षणभंगुर, नश्वर अस्थिर संपदा)

राजाओं की राज्य-लक्ष्मी, रक्षक, सैनिक आदि सभी।
राज-महल वा रत्न-कोष सब, ना जाते हैं साथ कभी॥
सभी रानियाँ पुत्रादिक वे, यहीं छूट रह जाते हैं।
दीप-शिखा-सम नष्ट सभी हों, स्वप्न-समा कहलाते हैं॥ 34॥

(रत्नत्रय से मोक्ष प्राप्ति)

पंचेन्द्रिय के विषय-भोग में, आर्त्त, रौद्र-परिणामों से।
पाप बढ़ा क्यों रहा मूर्ख फिर, -क्यों अशांत उन ध्यानों से॥
आकुलता-मय विषय छोड़ निज, - ध्यान करे निज-सुख मिलता।
रत्नत्रय से मोक्ष मिले फिर, शाश्वत-सुख का दल खिलता॥ 35॥

(जग में सर्व सुखी कौन?)

निर्धन-मानव धन-आशा से, सदा दुखी रहता जानो।
धनिक-वर्ग भी धन-तृष्णा से, दुख में रमता है मानो॥

दोनों दुखमय, सौख्य कहाँ फिर, इस जग में जो दिखते हैं।
धन-त्यागी, वैरागी-मुनिवर, आतम का रस चखते हैं॥ 36॥

(परिषह-विजयी मुनि, सर्वसुखी)

पुण्य सु-कर्माधीन सुखों में, तथा तपों के कष्टों में।
तप के कष्टों को शुभ माना, लोक-जनों या शिष्टों में॥
विषयाशा को जीत लिया है, जिन-मुनियों ने, सुखी रहे।
समता-सह परिषह सहते हैं, तृष्णा-विषयी दुखी रहे॥ 37॥

(मुनियों के प्रशंसनीय गुण)

मुनियों की स्वाधीन विहरता, अदीन-चर्या, राग-हनन।
शास्त्रों का वह पाठ-पठन वा, चंचल मन का जहाँ शमन॥
गुणवानों का संग-साथ वह, शांत-चित्त का संगम है।
न जाने यह किन जन्मों के, पुण्य-कर्म का बंधन है॥ 38॥

(मुनियों की त्याग, तपस्या)

महापुरुष का अतुल-त्याग वह, ग्रन्थों का चिन्तन, मन्थन।
जीव-मात्र में करुणा-भारी, मिथ्यामत का जहँ खण्डन॥
अन्त-काल में आगम-रीत्या, नीरस, प्रोषध तपो महान।
अल्प-तपों का ना फल है यह, महा-तपस्या का फल जान॥ 39॥

(तप से निर्जरा व मोक्ष)

कोटि-उपायों से न रक्षित, यह तन कभी भी हो सकता।
अतः हि आग्रह छोड़ विवेकी! तन न शाश्वत हो सकता॥
औदारिक-तन उदारता को, जीवन में है ला सकता।
तप करके जब होय निर्जरा, शिव-भाजक तब हो सकता॥ 40॥

(कुटुम्बी-जन हितकारी नहीं)

प्रतिक्षण आयु क्षय होती है, श्वास-श्वास घटती जाती।
घट-जल-सम जीवन रीते फिर, पुनः उम्र ना बढ़ पाती॥
पुत्र, मित्र, स्त्री, परिजन सब, यथा नाव में बैठे जन।
घाट-उतरते, बिछुड़ें निश्चित, ना रहता है अपनापन॥ 41॥

(क्षणभंगुर आयु)

यथा-राहु प्रकाश-पुंज उस, रवि को इक-दिन ग्रस लेता।
वैसे-यम भी इस प्राणी को, इक-दिन ग्रास बना लेता॥
काल-समा ना बल शाली है, कोई जगत् में शत्रु यहाँ।
नहीं बचा सकते सुरपति भी, आयु, क्षीण हो जाये जहाँ॥ 42॥

(मोक्ष कैसे मिलता है?)

मानव-जन्म में कर्म-भूमि वा, विदेह-समा हो काल जहाँ।
बन साधु फिर शुक्लध्यान हो, सर्व-कर्म-क्षय होयँ जहाँ॥
मोक्ष मिले फिर मृत्यु नहीं है, सिद्ध अमर हो जाते हैं।
सिद्ध बनें जो अनन्त-सुख हों, नहीं जगत् भरमाते हैं॥ 43॥

(शील से रक्षा की प्रेरणा)

दुर्लभ ऐसा मानव-जीवन, विषयों में ना व्यर्थ करो।
अग्नि-समा उस स्त्री-भोग में, घृत-सम शील न भष्म करो॥
श्रृंगारों में आयु बढ़े ना, भोग नरक में ले जाते।
धरे शील नारी भी तो नर-समा स्वर्ग-सुख मिल जाते॥ 44॥

(दुःख से पूरित मानव-जीवन)

मानव-जीवन तन, मन, धन के, दुःख से पूरा घिरा हुआ।
सहस्र रोगों का भी गृह है, वात, पित्त, कफ भरा हुआ॥
पाप-कर्म में लगा इसे नर, -भ्रमण-भवों का करता क्यों?
रहट्-चक्र-सम चौरासी उन, योनि-लाख भटकता क्यों? 45॥

(संसार की परिभाषा)

जन्म होय तो उत्सव करता, मरण होय तो रोता है।
पर-चीजों को अपना कहता, आत्म-सम्पदा खोता है॥
अनन्त-बार का चक्र यही है, नया कभी ना गह पाया।
वही पुराना नया जानकर, पाया, खोया दुःख पाया॥ 46॥

(जो आज तक नहीं पाया वही धर्म है)

धर्म कहाँ है कैसा उसका, -स्वरूप समझ न पाया है।
नहीं अभी तक मिला अतः फिर, भव-भव में भरमाया है॥
एक-बार वह धर्म मिले बस, रत्नत्रय का स्वाद मिले।
आत्म-सम्पदा संयम व्रत ये, मिलें मोक्ष का द्वार खुले॥ 47॥

(परिजनों का वियोग अवश्य होता है)

कई-जन्मों में मात-पिता व, भ्रात, मित्र ने साथ तजा।
जब तक सुख, धन रहा पास में, उन सबने बस लिया मजा॥
पीली पड़ती डाल-पत्तियाँ, पंछी वे उड़ जाते हैं।
दुःख आने पर सभी भूलते, नहीं पास में आते हैं॥ 48॥

(स्वार्थी-संसार में स्वार्थी-जन)

स्वारथ से संसार भरा है, अपने सुख को रोते हैं।
दुख आता जब दूर भागते, कोई सगे न होते हैं॥

भ्रात, मित्र सब बैरी बनते, तन-सुख, नाम बढ़ाने को।
नहीं बुलाये समक्ष आते, दुख की आग बुझाने को॥ 49॥

(मन-शांति का उपाय)

तन-सुख कारज बैर धारकर, कमठ-सरीखे बन जाते।
भव-भव में वे बैरी बनकर, बदला लेने फिर आते॥
अतः सभी को क्षमाभाव से, शांत करो मन-स्वस्थ करो।
कोई किसी का नहीं है साथी, धर्म-मित्र बस साथ वरो॥ 50॥

(दुर्गति- दुःख का कारण)

गृह-बन्धु वे विवाह करके, भव-बंधन बँधवाते हैं।
मोह-जाल में मकड़ी-सदृश, कष्टों में फँसवाते हैं॥
पर-चिंता में आत्म-उलझती, पंच-पाप बढ़ जाते हैं।
गृहारम्भ व परिग्रह से भी, दुर्गति-दुख को पाते हैं॥ 51॥

(स्व-स्व कर्मों से भव-भ्रमण)

भव-दुख में उलझाने वाले, शत्रु नहीं तो क्या होंगे।
आतम जब दुर्गति पावेगी, क्या वे साथ वहाँ होंगे॥
अपने-अपने कर्मों के वश, आतम भव में जाती है।
नहीं किसी की आत्म साथ में, बचा किसी को पाती है॥ 52॥

(दुःख का मुख्य कारण)

खारे-जल-सम प्यास बढ़ाते, मृग-मरीचका विषय रहे।
भव-समुद्र में मगरमच्छ-सम, मोह, राग वा द्वेष रहे॥
बड़वानल-सम जन्म बुढ़ापे, भँवर-चक्र-सम मृत्यु है।
इस आतम को दुख का कारण, भव ही जान स्व-शत्रु है॥ 53॥

(बाल-पने आदि की व्यस्तताएँ)

बाल-पना तो क्रीड़ा में ही, व्यतीत शीघ्र हि हो जाता।
युवा-पना स्त्री-भोगों में, -लीन, व्यर्थ ही जो जाता॥
प्रौढ़ हुए तो गृह-चिंता ही, मानव को खा जाती है।
बूढ़े-पन में निद्रा, शय्या, - भाती, हर ले जाती है॥ 54॥

(निर्ग्रंथ मुद्रा की सार्थकता)

धन्य मुनीश्वर, तप से जिनने, इस तन को है सुखा दिया।
हुआ लिप्त है रज-कण से तन, देह-राग को भुला दिया॥
ना देखे जग उन्हें राग से, नहीं स्त्रियां नेह धरें।
नहीं लुभाती लोक-सम्पदा, जग में साधु विराग रहें॥ 55॥

(बुढ़ापे में धर्म की दुर्लभता)

बूढ़े-पन में भवि तेरी वह, नेत्र-ज्योति भी कम होगी।
नहीं सुनाई देंगे वच भी, कर्ण-शक्ति जब दम खोगी॥
कमर जहाँ फिर झुक जावेगी, दर्द आयेगा घुटनों में।
जिन, मुनि दर्श व यात्रा, संयम, रह जावेगा स्वप्नों में॥ 56॥

(संयम के योग्य; युवावस्था)

युवा-अवस्था ही संयम के, उत्तम-पालन का साधन।
उत्साही बन वैरागी के, कर्म-निर्जरा का कारण॥
दो-बछड़े वे रथ को खीचें, ऐसे स्वप्नों-सम होगा।
युवकों में वह मुनि-व्रत पालन, बूढ़े-पन में कम होगा॥ 57॥

(सम्यग्दर्शन का फल)

पंचम-युग है मिथ्यामत भी, डग-डग पर दर्शित होते।
धर्म-क्षेत्र में लोक-कामना, -लिये, कार्य ही गम जोते॥

लौकिक-इच्छा-बिना, धर्म का, -कार्य चंद जन करते हैं।
वे ही समकित-साथ व्रतों से, स्वर्गिक-सुख को वरते हैं॥ 58॥

(श्रेष्ठ-निर्जरा का उपाय)

बाल-ब्रह्मचारी होकर के, संयम-पथ को अपनाना।
श्रेष्ठ रहा है, जो अपनाते, श्रेष्ठ-निर्जरा को पाना॥
पर-नर-भव में अधिक समय न, कर्म-नाश में जावेगा।
मल्लिनाथ प्रभु के सम ही बस, अर्हत्, सिद्ध पद पावेगा॥ 59॥

(योग्य-विवाह का उद्देश्य)

सन्तानों को पाने हेतु, भविक विवाह रचाता है।
ना परिवार-नियोजन करता, वेद षण्ड ना पाता है॥
जैनी बढ़ते सन्तानों से, ना चाहे तो व्रत पाले।
तीर्थंकर के मात-पिता बन, संयम-धर सुर-सुख पाले॥ 60॥

(अब्रह्म से दुर्गति)

मात्र विषय के कारज परिणय, -रचा, पाप को भरता है।
कहा बड़ा अब्रह्म, असंयम, दुर्गति-पीड़ा सहता है॥
पर -नारी का व्यसन नरक के, -द्वार खोल वह देता है।
पर-नर-आशा, निगोद भी दे, दुख की जहाँ बहुलता है॥ 61॥

(पतिव्रता-नारी ही श्रेष्ठ)

स्वदार-संतोषी जो मानव, आशा-परिमित होती है।
एक-पतिव्रत-धारक नारी, गृह-सति सुख की ज्योति है॥
दान व पूजा शील साथ में, -उपवासों-सह श्रुत व ध्यान।
अगर करें तो स्वर्ग मिलेगा, हो सुशीघ्र हि निज-कल्याण॥ 62॥

(मनुष्यायु को देवता भी तरसते हैं)

शील बिना जो विषय-भोग में, व्यर्थ हि समय गँवाते हैं।
सागर-सम सुर-आयु सामने, बूँद-आयु जो पाते हैं॥
उल्का-पात-सम-आयु में वे, ना संयम अपनाते हैं।
जिसे देवता नित्य तरसते, आयु-अंत पछताते हैं॥ 63॥

(अमूल्य-जीवन का दुरुपयोग)

चंदन-सम निज-जीवन को जो, विषयों में खो देते हैं।
नहीं मूल्य वे मूर्ख समझते, रहस्य-पा रो लेते हैं॥
यथा काष्ठ-चंदन को जिसने, बना, कोयला बेच दिया।
एक-मूठ में पैसा मिलता, सारा चंदन व्यर्थ किया॥ 64॥

(संयम-धारण का फल)

देवों की वह दीर्घ-आयु भी, नहीं प्रयोजन रखती है।
कुछ-वर्षों की अल्प-आयु भी, कर्म-नष्ट कर सकती है॥
कर्म-भूमि की धर्म-धरा पर, जो संयम को धारेगा।
अनन्तकालिक पाप-कर्म के, क्षय-फल को वह पालेगा॥ 65॥

(संयमधारी व असंयमी के मरण)

ना गृह का त्यागी बनता जो, गृह-जन उसे हि-तज देते।
अर्थी से मरघट ले जाते, भष्म-पूर्ण वे कर देते॥
मरा असंयम से वह प्राणी, अतः हि रुदन-मचाते हैं।
गृह-त्यागी संयम से मरता, हर्षे-जन, गुण-गाते हैं॥ 66॥

(संयमधारी की महिमा)

मुनिपद को न धार सके तो, आश्रम की वह छाँव गहे।
व्रतियों से सेवा-पावेगा, देश-संयम हि जहाँ धरे॥

मुनि बनता गर मुनिजन-सेवा, -पाता है वह बड़भागी।
स्वर्ग जाय फिर विदेह में आ, संयम-पा, शिव-अधिकारी॥ 67॥

(जितना छोड़ोगे, उतना पाओगे)

बहुत-परिग्रह चिंताओं का, -गृह होता है भवि मानो।
परिग्रह का परिमाण करो तुम, चिंता-मुक्त बनो जानो॥
सर्व- परिग्रह-त्यागी मुनिवर, चिंताओं से मुक्त रहें।
सदा हि रहते प्रसन्न यतिवर, ध्यान-साधना-युक्त रहें॥ 68॥

(दुर्लभ-मानव-तन पाना)

हित व अहित कहाँ होता है, ऐसा जीव विचार करे।
हित की प्रज्ञा दुर्लभतम है, पापों का परिहार करे॥
ज्ञान, आचरण एक नहीं तो, निज-कल्याण कहाँ होगा।
ऐसा दुर्लभ मानव-जीवन, फिर मिलना मुश्किल होगा॥ 69॥

(वीतराग-धर्म तज; सराग-पूजक अज्ञानी)

धर्म-मार्ग ही सुपुण्य देता, बने भवि वह इन्द्र, नरेन्द्र।
मोक्षमार्ग-व्रत जिसे मिले हैं, भजे मुनीश्वर श्रेष्ठ-जिनेन्द्र॥
वीतराग-तज, सराग-आदि, - पूजे, यह अज्ञान महा।
अगर राग का बने उपासक, कहाँ मिले सुख, पुण्य वहाँ॥ 70॥

(सर्वज्ञ के वचन)

दान, व्रतों से पुण्य-पाय भवि, जग में फिर पूजा जाता।
उच्च-कुलीन बुद्धिवन्त वह, उन्नति, गौरव को पाता॥
व्यसनी कामी अन्य-जनों को, अवसर दुर्लभ है पाना।
ऐसे वच सर्वज्ञ-कथित को, गणधर-मुनियों ने माना॥ 71॥

(गृह-लक्ष्मी से पवित्र; गृह)

उच्च-कुलों में विवाह होना, जैन-सु-संतति का कारण।
मेल-गुणों का वर-वधु में हो, मिला-कुण्डली ले साधन,
भाव मिलें, बन जीवन साथी, पति-सह सु-धर्म पत्नी हो।
संस्कारों से पूर्ण बनाती, सुतादि-सह गृह-लक्ष्मी जो॥ 72॥

(गृह-बर्बादी का कारण)

नहीं गुणों का मेल जहाँ हो, बने महाभारत-सा गृह।
नित्य कषायें, झगड़े होते, होय नरक, मसान-सा गृह॥
नर व्यसनी, सौकीन रहे तो, गृह-वरवादी का कारण।
पर-नर-रत कुलटा खर्चीली, दुर्गतियों का है साधन॥ 73॥

(पुण्य के अयोग्यः- दुष्कुलीन जन)

जाय सुता-गर नीच-कुलों में, सेवा, धर्म व्यर्थ जाये।
आय सुता-गर नीच-कुलों की, गृह पवित्र ना बच पाये॥
नहीं साधु के चरण पड़ें जहँ, ऐसा दुष्कुल माना है।
दुष्कुलीन को महापुण्य से, -वंचित जग ने जाना है॥ 74॥

(दुष्कुलीन का लक्षण)

आमिसादि को सेव्य मानते, जिस कुल में, दुष्कुल माना।
पिण्ड-शुद्धि ना होती उसकी, अछूत ही उसको जाना॥
श्रद्धा-सह सुनने वा व्रत के, -पालन में ना कुछ बाधा।
सुरगति-दायक अणु-व्रत को तो, पशुओं ने भी है साधा॥ 75॥

(दीक्षा का धारक कौन?)

पंचम ऐसे दुषम-काल में, आदर-सेवा घटती देख।
कुलीन, सु योग्य हो दीक्षा-धारक, होय उसकी देख व रेख॥

कुल आदिक से हीनों के सह, अगर अवज्ञा जिनपथ की।
होती है गर उसे दूर रख, लाज बचावें जिन-पथ की॥ 76॥

(वीतरागता रहे कायम)

उत्तम-कुल का वर्ण-लाभ हो, दीक्षा-व्रत को प्राप्त करे।
मिथ्यात्वी भी सम्यक्ता से, -जुड़े धर्म-अनुपान करे॥
सरागता की नहीं मिलावट, वीतरागता कायम हो।
णमोकार व जिनवचनों का, -घोष सुबह वा सायं हो॥ 77॥

(पुण्य-वृद्धि का उपाय)

प्रातः, सायं मध्य-काल में, जिनवर का शुभ-दर्शन हो।
आलोकित वह भोज्य, छने उस, - कूप-नीर का सेवन हो॥
मर्यादित-भोजन से तप नित- बढ़े, धर्म का साथ रहे।
पाप-निर्जरा, पुण्य-वृद्धि फिर- मिलता शिव परमार्थ रहे॥ 78॥

(मिथ्यात्वपने का उदाहरण)

शिव-पथ मिलना कठिन रहा फिर, -मोक्ष कहाँ वह मिल सकता।
मिथ्यादर्शन ना वह छूटे, जहाँ सरागता को भजता॥
पत्थर पर ना अंकुर उपजें, नहीं रेत से तैल मिले।
जहाँ असंयम की पूजा हो, ना समकित के फूल खिलें॥ 79॥

(निज-आत्मा का दर्शन)

वीतरागता के दर्पण में, निज-आतम का दर्शन हो।
राग-द्वेष आदिक दोषों के, दागों का फिर मर्जन हो॥
राग-द्वेष से मलिन दाग वे, जिस दर्पण में दिखते हैं।
आत्म कहाँ निर्मल हो सकती, राग-शरण जो पड़ते हैं॥ 80॥

(वीतरागता व सरागता)

स्वच्छ-नीर ही तन, वसनों को, धो, निर्मलता का कारण।
गंदा-पानी गंदा करता, ना पवित्रता का साधन॥
वैसे वीतरागता ही वह, आतम को निर्मल करती।
सरागता वह भव में रखती, आत्म-स्वच्छता ना वरती॥ 81॥

(प्रभु-दर्शन से आत्म विशुद्धि)

जैसे-साबुन वस्त्रादिक को, साफ व स्वच्छ बनाता है।
वैसे-वीतराग का दर्शन, आत्म-शुद्धि में भाता है॥
सद्गुरुओं की उपासना वा, श्रुत-पाठन, संयम, तप, दान।
पुण्य-वृद्धि व कर्म-निर्जरा, -में होते हैं वे वरदान॥ 82॥

(विषयों से विरक्त; मुनि)

अजीर्ण होता जिसको भोजन, वमन करे तो सुख होता।
वैसे यतियों को विषयों के, मोचन में है सुख होता॥
विषयों की तृष्णा है जिसको, विषय-त्याग में दुख होता।
विषय; भार-सम, त्यागे सुख हो, राग; भवों में दुख देता॥ 83॥

(पर से; निज का ध्यान)

धन-चोरी हो, दुख का अनुभव, दान-दिया तो सुख जानो।
दान-दिया धन, पुण्य मिले वा, इक-दिन छूटे दुख मानो॥
जितना-जितना पर-छोड़े भवि, उतना-उतना निज की ओर।
आता, भवि वह गुण-धन पाता, अध्यातम की होती भोर॥ 84॥

(पुण्य-पाप का खेल)

धन-निर्धनता पुण्य-पाप का, -खेल रहा है भवि जानो।
अज्ञ धनिक हो गर्व है करता, कर्म-अज्ञ है वह मानो॥

धन छूटे तो शोकातुर हो, क्योंकि मोह का योग कहा।
जिनवर कहते संयोगों में, निश्चित जान वियोग रहा॥ 85॥

(नरकगामी कौन?)

बिना कमाये धन मिलता गर, अभिमानी बन जाता है।
अन्यायी का धन व्यसनों में, -जाता, दुर्गति दाता है॥
मद्य-पान व वेश्या-वृत्ति, कुशील महिला का सम्पर्क।
दीन-दरिद्री बना व पशु-गति, दारुण-दुख-मय देता नर्क॥ 86॥

(स्त्री का बीभत्व स्वरूप)

माया-पुतली ठग-यौवन से, -भरी जु कुच-धारी महिला।
मस्त-चाल व छैल-छबीली, नर-मन को हरती महिला॥
कटाक्ष-बाणों से पुरुषों का, -हृदय विदारित करती है।
कामी बन वा गर्भ-नष्ट कर, योनि-लाख भटकती है॥ 87॥

(भ्रूण-हत्या महापाप है)

चाहे नर से या नारी से, अगर जीव की हिंसा हो।
ऐसा कार्य अगर करते वे, छूटे मार्ग अहिंसा वो॥
जन्म-जात वे जैनधर्म-पा, महाव्रतों के योग्य रहे।
वंचित होते अगर जन्म से, दुख अगणित संयोग रहे॥ 88॥

(धर्म की सफलता कब?)

हिंसा-पाप के प्रक्षालन-बिन, दानादिक ना कर पाये।
सद्गुरु से जो प्रायश्चित्त ले, तभी योग्यता फिर पाये॥
अगर छिपाता अपराधों को, धर्म सदा निष्फल होता।
हृदय स्वच्छ-कर, दण्ड निभाये, तब ही धर्म सफल होता॥ 89॥

(महादु:खों का दाता कौन?)

इस ही भव का, इस ही भव में, पापों का जब क्षय होता।
पाप-कर्म का भार नष्ट हो, नहीं कष्ट भव-भव होता॥
अधिक-गुणा जब पाप बढ़े तो, महा-दुखों का दाता है।
छह-घटि का, छह-माह सरीखा, कर्म-पाक उपजाता है॥ 90॥

(नारी की दुर्गति; कैसे?)

ठगी, व्यर्थ, नर, काम-भोग-वश, दवा-स्त्री को, भोक्ता हो।
अभिमानी तन-शक्ति खोकर, पाप-भार को ढोता वो॥
नारी भी छल, हठकर नर की, अगर शक्ति जब हर लेती।
वीर्यान्तराय-कर्म बाँधकर, दुर्गति-भव-नारी लेती॥ 91॥

(व्रत-भंगी की तुलना)

जिस त्यागी ने एक-बार जिस, विषय-भोग को छोड़ दिया।
अगर पुनः वह विषय-चाहता, वमन को उसने ग्रहण किया॥
व्रत-भंगी वह भंगी से भी, अछूत ज्यादा माना है।
अगर गहे न प्रायश्चित्त तो, लोक-निंद ही जाना है॥ 92॥

(व्रत लेने उत्साही कौन?)

वीर्यान्तराय-कर्म शिथिल हो, व्रत लेने उत्साहित हों।
ब्रह्मचर्य की शक्ति हि व्रत को, पूर्ण-निभाती साबित हो॥
नहीं शक्ति जो व्यर्थ गँवाते, तप का तेज टपकता है।
प्रसन्न-योगी जग में भाता, मन ना जिससे हटता है॥ 93॥

(सन्मार्ग-प्रदाता; गुरु की महिमा)

सही-दिशा का दिग्दर्शन हो, प्रशस्त-मग है वह होता।
शिष्य रहे निश्चिंत जहाँ पर, ना ही आत्म-कष्ट होता॥

पाप-भीरु हों गुरु, शिष्य को, -वे सन्मार्ग दिखाते हैं।
अवश्य जीवन में गुरु-चुनना, भव से पार लगाते हैं॥ 94॥

(जैसा हो अन्न, वैसा हो मन)

गृहि के गृह का भोज्य शुद्ध हो, मर्यादित-गुण पूर्ण जहाँ।
उत्तम-निर्मल विचार प्रकटें, धर्म-ध्यान हो नित्य वहाँ॥
दया-पालते पुण्यार्जन-सह-आवश्यक शोभित होते।
पूर्ण-आयु हो, शक्ति-वृद्धि हो, भविजन पापों को धोते॥ 95॥

(जीवन को हानिकारक; फास्टफूड)

बाह्य-भोज्य जो, सड़ा-गला हो, जीवों से भी भरा हुआ।
अनेकानेक व्याधि का हेतु, मन-विकृति से रहे छुआ॥
बना माँस, चर्बी, हड्डी वा, अण्डे, नख, केशों से पूर्ण
दुर्गति-कारक पाप बढ़ेगा, कष्ट-मयी जीवन हि पूर्ण॥ 96॥

(नारी का सफल जीवन)

गृह की कन्या संस्कारित जो, मात-पिता की विनय करे।
जिन-दर्शन नित, पूजा, श्रुत का, -पठन-पाठ भी नित्य करे॥
दिन में भोजन, जल-गालन हो, अभक्ष-छोड़, नम्र रहती।
गुरूपासना, तीर्थवंदना, सफल-पूर्ण-जीवन करती॥ 97॥

(नारी को संदेश)

जिस-महिला ने गृह के बाहर, पैर-पसारे हों आगे।
पर-पुरुषों के साथ बैठती, और साथ में जो भागे॥
हँसी-मजाक व भड़कीला तन, अभक्ष-खाती गृह बाहर।
न जाने वह रसोई, धर्म व, ना पाती गृह, जग-आदर॥ 98॥

(विनयचारी का स्वरूप)

निज–गृह सुत जो संस्कारित हो, माँ, धार्मिक–पाठशाला से।
गुरु व बड़ों की सेवा, आदर, सदा–प्रशंसित शाला से॥
वीतराग का रहे उपासक, अभक्ष–भोज्य का न रागी।
गुरु–चर्या कर, भोजन करता, मिथ्या, व्यसन, नशा–त्यागी॥ 99॥

(दुर्भागी की हानि)

कलंकी–कुल व व्यसनी–गृह में, –जन्में सुत दुर्भागी जो।
पूज्य–जनों की अविनय करता, दुर्गतियों का भागी वो॥
व्यसनासक्त, हठी, घुमक्कड़, कुल को दाग लगा देता।
धार्मिक–परम्परा से हटकर, परिजन को भी दगा देता॥ 100॥

(संतानों से संतति)

योग मिले धार्मिक–गृह उत्तम, आचारी हों मात–पिता।
आज्ञाकारी–सन्तानें गृह, –सुखी–बनावें पुत्र, सुता॥
जैनी–कुल में विवाह कर वह, जैनों की सन्तति चलती।
योग्याचार–विचार–धर्म में, जन–जन की शैली ढलती॥ 101॥

(स्वर्गों का सुख किसे?)

वैरागी जो मार्ग–प्रभावन, –चहुँ–दिशि में फैलाते हैं।
मोक्षमार्ग में रत्नत्रय से, जीवन–धन्य बनाते हैं॥
श्रावक भी वे सोलह स्वर्गों, –तक का सुख भी पा सकते।
मुनि बनते गर लौकान्तिक हों, नर–बन फिर शिव–पा सकते॥ 102॥

(पाप-वचन से मौन; मुनि)

लौकिक–सुख तो कर्माश्रित है, नहीं चाहते वैरागी।
विषय–राग की चकाचौंध में, ना बनते हैं वे रागी॥

पाप–वचन में मौनी मुनि हैं, और अकेली महिला से।
नहीं कलंकी बनते हैं यति, मौन–धारते महिला से ॥ 103 ॥

(ध्यानस्थ-मुनि की छवि)

मन–मर्कट को वश में कर मुनि, सदा ध्यान, स्वाध्याय करें।
ज्ञान, दर्श, तप, वीर्य, चरित–धर, पंचाचारी नित्य रहें॥
परीषह–सहते, उपसर्गों में, –तन–विराग निर्मोह रहे।
वे वैरागी कषाय–जीतें, मोही–जन–परिहार करें ॥ 104 ॥

(भेद-विज्ञान का चिंतन)

सदा भेद–विज्ञान सु–चिन्तक, दश–धर्मों का ध्यान धरें।
सोलह–कारण बारह–भावन, समाधि–रस का पान करें॥
मूलगुणी वे, उत्तर–गुणधर, लीन होयँ निज–आतम में।
देह–हेय, निज–उपादेय फिर, –सुखी, –अनन्त–परमातम में॥ 105 ॥

(ध्यान की प्रेरणा)

द्वार; एक सौ आठ कहे हैं, आस्रव के परमागम में।
मुनि जब समता–धारण करते, रोकें ध्यान निजातम में॥
अतः एक सौ आठ अंक–गुण, –का मुनि–सह, सुध्यान करो।
मिथ्या, अविरति आदिक छूटें, आश्रव–बिन गुण–पान करो॥ 106 ॥

(मोक्ष-सुख की भावना)

निकट–भव्य हे! लौकिक–सुख को, –भूलों, आतम में झूलो।
निज–सुख–पाकर, मोक्ष–सुखी हो, ज्ञान, दर्श का अनुभव लो॥
आत्मा के अनुशासन से तुम, गुण के भद्र बनो प्यारे।
'**आर्जवसागर सूरि**' कहें सुन, –आत्मोद्धार करो न्यारे॥ 107 ॥

प्रशस्ति

(गागर में सागर समाया)

श्रेष्ठ सु–ग्रन्थ आत्म–अनुशासन, जिसका शुभ–आधार लिया।
सरल–सरलतम पद्य–रसों–सह, –अनुभव कृति में पूर दिया॥
इस–कृति से विद्या–रस सागर, –आर्जव–घट में पायेगा।
आत्म–ध्यान में डूब विरागी, –शुद्ध पूर्ण हो जावेगा॥ 108 ॥

(रचयिता की आन्तरिक भावना)

व्रत–ऋद्धि के पूर्ण किये, चल,–रहे सर्व–दोष प्रायश्चित्त।
चरित–शुद्धि के व्रत भी हों वे, –पूर्ण, ध्यान में होवे चित्त॥
होवें बाल–ब्रह्मचारी वे, मम–समाधि–करवाने में।
निर्यापक–बन, धर्म–सुनावें, निर्विकल्प–सुख–पाने में॥ 109 ॥

(कृति–रचाने का सुअवसर)

गिरि–सम्मेद की वंदन का यह, मंगल–अवसर जो पाया।
कोटि–कोटि उन उपवासों–सम, –फल आगम में है गाया॥
चार–बार सम्मेद–शिखर की, यात्रा का सौभाग्य मिला।
आत्मोद्धार–शतक लिखने का, अन्तिम में शुभ–भाग्य खुला॥ 110 ॥

(कृति–रचना का समय)

वीर–मोक्ष हि पच्चीस सौ–सह, –संवत् अढ़तालीस जहाँ।
आत्मोद्धार–सुशतक पूर्णता, छत्तीस–गढ़ यह देश यहाँ॥
विहार–काल का योग रहा शुभ, पुण्य–कर्म परम–संयोग।
इस–कृति का हम पाठ करें नित, मोक्ष–देय हि ऐसा योग॥ 111 ॥

दोहा

प्रथम-तीर्थ-कर्त्ता रहे, आदिनाथ-भगवान।
कृषि-कर या ऋषिवर बनो, कहा आदि में जान॥ 112 ॥

✵ ✵ ✵

शासन है यह वीर का, धर्म-अहिंसा मान।
शील-धर्म रक्षा करे, **आर्जवता** से जान॥ 113 ॥

✵ ✵ ✵

सन्मार्ग–प्रभावना–काव्य

(पर्व, संस्कार और
तीर्थादि पर आधारित काव्य)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

सन्मार्ग-प्रभावना-काव्य

- मंगलाचरण
- देव-शास्त्र-गुरु
- वर्षायोग का महत्त्व
- वीर-शासन जयन्ती
- मोक्ष-सप्तमी पर्व
- आत्मतत्त्व की एक भावना
- संवेग और वैराग्य रूप दो भावनाएँ
- रत्नत्रय मय तीन भावनाएँ
- मैत्री प्रमोद आदि चार भावनाएँ
- शास्त्राभ्यास जिन स्तुति आदि
- अनित्यादि बारह भावनाएँ
- ध्यान के प्रकार- चार आर्त्तध्यान
- इष्ट-वियोग-विजय
- अनिष्ट-संयोग-विजय
- पीड़ा चिन्तवन-विजय
- निदान-विजय
- प्रशस्त-निदान
- चार रौद्र-ध्यान
- हिंसानन्द-विजय
- मृषानन्द-विजय
- चौर्यानन्द-विजय
- परिग्रहानन्द-विजय
- चार धर्म-ध्यान
- आज्ञा-विचय
- अपाय-विचय
- विपाक-विचय
- संस्थान-विचय
- पदस्थ-ध्यान
- पिंडस्थ-ध्यान
- रूपस्थ और रूपातीत ध्यान
- शुक्लध्यान
- ध्यान-संगोष्ठी में प्रयुक्त पद्य
- रक्षा-बंधन-पर्व
- तिथियाँ आदरणीय
- सप्त परम-स्थान
- अष्ट-प्रवचन मातृकाएँ
- अष्ट-शुद्धियाँ
- षोडसकारण-पर्व-महिमा
- दर्शन-विशुद्धि-भावना
- विनय-सम्पन्नता-भावना
- शीलव्रतेष्वनतिचार-भावना
- अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-भावना
- अभीक्ष्ण-संवेग-भावना
- शक्तितस्त्याग-भावना
- शक्तितस्तप-भावना
- साधु-समाधि-भावना
- वैयावृत्तकरण-भावना
- अर्हत्-भक्ति-भावना
- आचार्य-भक्ति-भावना
- बहुश्रुत-भक्ति-भावना

- प्रवचन-भक्ति-भावना
- आवश्यकापरिहाणि-भावना
- मार्ग-प्रभावना-भावना
- प्रवचन-वात्सल्य-भावना
- चा.च.आ.श्री शांतिसागर
- दस-लक्षण-पर्व-महिमा
- उत्तम-क्षमा-धर्म
- उत्तम-मार्दव-धर्म
- उत्तम-आर्जव-धर्म
- उत्तम-शौच-धर्म
- उत्तम-सत्य-धर्म
- उत्तम-संयम-धर्म
- उत्तम-तप धर्म
- उत्तम-त्याग-धर्म
- उत्तम-आकिञ्चन्य-धर्म
- उत्तम-ब्रह्मचर्य-धर्म
- रत्नत्रय-व्रत-पर्व
- क्षमा-वाणी-पर्व-भावना
- विमानोत्सव-रथयात्रा
- शिक्षा-संस्कार
- पाठशाला-सम्मेलन
- संस्कार-भावना
- अपना अभिमत किसको दें ?
- समवसरण-भावना
- धन्य-त्रयोदशी (धनतेरस) दीपावली
- पिच्छिका परिवर्तन
- अष्टाह्निका-पर्व-महिमा
- सिद्धचक्र-महिमा
- षोडस-कारण-पर्व-माहात्म्य
- प्रथम-तीर्थ-भावना
- ऋषभदेव-वैभव
- अक्षय हुआ आहार (अक्षय-तृतीया)
- ऋषभ-देव पञ्चकल्याणक तिथियाँ
- महावीर जयन्ती महोत्सव
- श्रुत-पञ्चमी-पर्व महोत्सव
- शास्त्राध्ययन-महिमा
- साधु-साधना एवं सावधानी
- भव्य-सम्यक्त्वी-साधु-सेवा-फल
- धर्म परिरक्षण-भावना
- धर्म-पालन का फल
- भक्ति-भावना
- स्तोत्र-भक्ति के अतिशय
- पञ्च-महातीर्थ वंदन
- सिद्धक्षेत्र और अतिशय-क्षेत्र वंदन
- प्रशस्ति

मंगलाचरण

तीर्थंकर जिन सन्मति प्रभु, को करूँ भक्ति सह नम्र-प्रणाम।
जिनके नाम मात्र से होते,-पूर्ण भविक के सब शुभ काम॥
सब जग के कल्याण हेतु मैं, जिनवर गीता गाता हूँ।
लिख सन्मार्ग-प्रभावना यह,-काव्य स्व धर्म बढ़ाता हूँ॥ 1॥

(देव-शास्त्र-गुरु)

वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, जिनवर-वाणी कल्याणी।
दर्पणवत् झलकें सब जग के, -पदार्थ जहँ, केवलज्ञानी॥
दिव्यध्वनि से अनेकान्त-मय, ग्रन्थ रचाते गणधर जो।
पढ़ें, विनय, श्रद्धा-युत धर्मी, महा पुण्य के भागी वो॥ 2॥

★★★

जन्म जरा की व्याधि हरे जो, अन्तरंग निर्मल बनता।
ऐसा आगम तत्त्व बताये, मोक्ष-मार्ग का सुख मिलता॥
ज्ञान-ध्यान-तप लीन श्रमण वे, रत्नत्रय का कोष भरें।
सब संकट से पार लगावें, भविजन जिनको शीश धरें॥ 3॥

(वर्षायोग का महत्त्व)

वर्षायोग का योग रहा शुभ, धर्मामृत की वर्षा हो।
ऐसा कोई दिन न जाता, जिस दिन कोई हर्ष न हो॥
गुरु-पूर्णिमा, होय जयन्ती, प्रभो आपके शासन की।
पार्श्व, श्रेयान व वासुपूज्य जय, मोक्ष तीर्थ-जिन पावन की॥ 4॥

(वीर-शासन जयन्ती)

वीर-प्रभो की वाणी से वह, बनी जयन्ती पावन है।
छ्यासठ दिन में शासन का शुभ, हुआ परम वह उद्गम है॥
गणधर बिन न वाणी खिरती, न भवियों को मार्ग मिले।
मार्ग बिना मंजिल न मिलती, साधन बिन न साध्य मिले॥ 5॥

★★★

सूर्य उदित हो, विकसित होता,-वन कमलों का, कमल खिलें।
भव्य-जनों को मोक्ष-मार्ग का, लाभ मिले तब तीर्थ मिले॥
तीरथ से सब तिर जाते हैं, भव संकट मिट जाते हैं।
तीर्थंकर के श्रुत तीरथ की, जय-जयकार लगाते हैं॥ 6॥

(मोक्ष-सप्तमी पर्व)

पार्श्वनाथ का मोक्ष-सप्तमी-पावन पर्व बड़ा न्यारा।
श्रावण-शुक्ला रही सप्तमी, जिसका उत्सव जग प्यारा॥
गिरि सम्मेद के महा कूट उस-स्वर्ण-भद्र से शिवगामी।
पूर्ण कर्म का बन्धन तोड़ा, मुक्त हुए प्रभु शुभ-नामी॥ 7॥

★★★

आप-समा हम क्षमावान हों, उपसर्गों में समता हो।
परीषहों में विजयी होवें, अतिशय जागे क्षमता वो॥
नहीं बैर हो कभी किसी से, सबको मित्र बनावें हम।
ध्यान लगाकर-कर्म-नाश कर, मोक्षसुखी बन जायें हम॥ 8॥

(आत्मतत्त्व की एक भावना)

आत्म तत्त्व की एक भावना, हर जीवों में नित्य रहे।
दिखे जगत् यह स्वार्थी सारा, स्वात्म धर्म ही मित्र रहे॥

कर्त्तव्यों में वास रहे नित, नहीं प्रमादी वेश रहे।
शाश्वत सुख को पावें हम सब, नहीं दुःखों का लेश रहे॥ 9॥

(संवेग और वैराग्य रूप दो भावनाएँ)

जगत् दुःखों को देखे भवि तो, संवेगी बन जाता है।
शारीरिक जब स्वभाव देखे, वैरागी पन भाता है॥
संवेगी, वैरागी बन भवि, मोक्ष-मार्ग अपनाता है।
मोक्ष पथिक बन ध्यान करे जब, कर्म हरे शिव पाता है॥ 10॥

(रत्नत्रय-मय तीन भावनाएँ)

सम्यग्दर्शन प्राण हमारा, सद्गति-सुख का दाता है।
सम्यग्ज्ञान है धर्म हमारा, मन निर्मलता पाता है॥
सम्यक्चारित शरण हमारा, सदा आचरण सिखलाता।
ध्यान, कर्मक्षय, मोक्षप्रदाता, भविक भावना शुभ भाता॥ 11॥

(मैत्री, प्रमोद आदि चार भावनाएँ)

सब जीवों में मैत्री भाव हो, गुणियों में शुभ प्रेम रहे।
दुःखी जनों में कृपा भाव हो, दुर्जन में माध्यस्थ रहे॥
यही भावना सदा रहे मम, नहीं किसी में खेद रहे।
सुखी रहें सब जीव सदा ही, नहीं किसी में भेद रहे॥ 12॥

(शास्त्राभ्यास जिन-स्तुति आदि सात भावनाएँ)

शास्त्रों का हो सुखद पठन वा, जिनवर चरणों की पूजा।
सर्व आर्य-जनों की संगति, गुणियों के गुण की पूजा॥
दोष सभी के ढांके भवि-जन, प्रिय-हित वचनों का वादन।
तथा आत्म के सदा धर्म की, रखें हि प्रतिदिन शुभभावन॥ 13॥

(अनित्यादि बारह भावनाएँ)

क्षणिक रहीं पयार्यों से जग,- अनित्य मय कहलाता है।
मरण समय में रक्षा न हो, अशरण, जग यह गाता है॥
चारों गति में भ्रमण रहा यह,- अनुप्रेक्षा संसार अहो!
जीव अकेला विधि फल भोगे, जड़ निज न, अन्यत्व कहो॥ 14॥

★★★

अशुचिता-मयी देह सदा यह, मिथ्यात्वादि आस्रव द्वार।
व्रत संयम से रुकें कर्म जब, संवर हो कर्मों का भार॥
तप करने से कर्म-निर्जरा,- हो, त्रिलोक-मय पूर्ण जहान।
रत्नत्रय-मय बोधि-दुर्लभ, दया-धर्म दे मोक्ष महान॥ 15॥

(ध्यान के प्रकार- चार आर्त्तध्यान)

(इष्ट-वियोग-विजय)

इष्ट वस्तु का वियोग होता, वहाँ विकलता आती है।
जब तब ना हो इष्ट समागम, आकुलता बढ़ जाती है॥
जहाँ वस्तु का आना-जाना, सदा लगा ही रहता है।
समता रखता धर्मात्मा वह, कर्मज फल को सहता है॥ 16॥

(अनिष्ट-संयोग-विजय)

अनिष्ट वस्तु का योग मिले जब, दुःख रूप हो गर परिणाम।
अनिष्ट रूप संयोग नाम है, अशुभ-आर्त्त है ऐसा ध्यान॥
पूर्व-कर्म के योग काल में, दुःख-साधन संयोग मिलें।
जीते धर्मी समता रखता, शीघ्र दुःख-क्षय, मोक्ष मिले॥ 17॥

★★★

(पीड़ा-चिन्तवन-विजय)

शरीरादि में कष्ट होय तब, मानस् खिन्न है हो जाता।
पीड़ा चिन्तवन ध्यान तभी हो, अशुभ बन्ध भी हो जाता॥
तन नश्वर है, आत्म अमर है, ऐसा चिन्तवन जब आता।
पीड़ा चिन्तवन विजयी बनकर, आत्म ध्यान में रम जाता॥ 18॥

(निदान-विजय)

पल-पल में मन विषय भोग के, चिन्तवन में है जब जाता।
भोगों में जा चित्त-ध्यान वह, निदान आर्त्त हि कहलाता॥
पूर्व पुण्य से स्वतः वस्तु का- लाभ मिले न चाह रहे।
निदान आर्त्त ध्यान को जीतो, सदा मोक्ष की राह रहे॥ 19॥

प्रशस्त-निदान (छह तरह की सम्यक् याचनाएँ)

भोग-सम्पदा नहीं चाहिए, दुःखों का क्षय मैं चाहूँ।
कर्मों का क्षय सदा हो प्रभुवर, बोधि-लाभ सदा चाहूँ॥
सुगतिगमन हो जिनवर मेरा, मरण-समाधि मैं चाहूँ।
जिनगुण सम्पत् मुझे मिले बस, केवल बोधि, मोक्ष चाहूँ॥ 20॥

(चार रौद्र-ध्यान)

(हिंसानन्द-विजय)

हिंसा में आनन्द मानना, रौद्र ध्यान कहलाता है।
क्रूर रहे आशय इससे मन,- हटे, धर्म-सुख लाता है॥
त्रस, थावर की हिंसा को तज, संयम-मय शुभ भाव रहे।
हिंसानन्द ध्यान वह छूटे, धर्म अहिंसा प्राप्त करे॥ 21॥

★ ★ ★

त्रस, थावर की हिंसा तजकर, धर्म अहिंसा पालन हो।
मन, वच, तन से किसी जीव को, कष्ट मिले वह चाल न हो॥
जैन-धर्म के मूल रहे उस, -दया-धर्म से पूर्ण बनें।
हिंसानन्दी ध्यान छोड़कर, धर्म-ध्यान सम्पूर्ण बनें॥ 22॥

★★★

धर्म अहिंसा पालन हो जब, हिंसानन्द हि कहाँ रहे।
जीवों का जो रक्षण करते, करुणा भाव ही सदा रहे॥
चलते-फिरते, खाते-पीते, विवेक जागृत नित्य रहे।
नहीं प्रमादी होती आतम, क्षमा-भाव ही मित्र रहे॥ 23॥

(मृषानन्द-विजय)

झूठा न व्यवहार रहे नित, मन वच तन निर्मल रहता।
मृषानन्द उस रौद्र ध्यान से,- दूर मनस् परिमल रहता॥
न्याय-नीति-मय जीवन सुन्दर, नित विश्वास बढ़ाता है।
नहीं पाप में, मात्र धर्म में, हर्षित हो सुख दाता है॥ 24॥

(चौर्यानन्द-विजय)

छल-कपटी या चौर्य मनस् जब, जीवन विकृत करता है।
चौर्यानन्दी रौद्र ध्यान से, हर-भव दुःख-मय होता है॥
पर-वस्तु में नियत स्वच्छ हो, नहीं लालसा रहे कभी।
अचौर्य भाव से तन्मय होकर, निर्भयता से रहें सभी॥ 25॥

(परिग्रहानन्द-विजय)

सदा परिग्रहों की आशा में, लीन रहे यह मन जानो।
भोगों के ही संरक्षण में, रौद्र ध्यान होता मानो॥

नहीं परिग्रह की आशा जब, मन पवित्र है हो जाता।
चिंताओं का भार दूर हो, जीवन शांति-मय भाता॥ 26॥

(चार धर्म-ध्यान)

(आज्ञा-विचय)

जिन भव्यों को जिन भगवन् की, आज्ञा सदा हि भाती है।
उन भव्यों को तत्त्व द्रव्य मय, वाणी सदा सुहाती है॥
रत्नत्रय-मय मोक्ष-मार्ग को, धर्मात्मा है अपनाता।
व्रत संयम से आगे बढ़ता, अर्हतादि-प्रभु पद पाता॥ 27॥

(अपाय-विचय)

पाँच तरह के मिथ्यात्वों वा, पाँच पाप से दूर रहे।
धर्म सुरक्षित करने ऐसा, अपाय विचय सु-ध्यान करे॥
नित मिथ्यात्व हि दुर्गतियों में, भटकाता दुःख है देता।
पंच पाप से निंदा होती, तज इनको भवि दुःख जेता॥ 28॥

(विपाक-विचय)

कर्मों का फल मिलता अपने,- कार्यों के अनुरूप सदा।
बिना कर्म के भविक किसी को, कुछ न मिलता भूल कदा॥
किन कर्मों का क्या फल मिलता, ऐसा विपाक-ध्यान करो।
अशुभ कर्म से सदा दूर हो, शुभकर्मों को सदा करो॥ 29॥

(संस्थान-विचय)

तीन-लोक का चिंतवन जिसमें, निज परिणामों का हो ध्यान।
पिण्डस्थादि ध्यान कहे जो, पंच-धारणा जिसमें जान॥

ऐसा चिंतवन मुनिवर करते, आत्म-लीनता पाते हैं।
वे संयमी संस्थान विचय से, एक चित्त हो जाते हैं॥ 30॥

(पदस्थ-ध्यान)

णमोकार के पद हैं उत्तम, जिसका भविजन ध्यान करो।
पाप नशाते, पुण्य खजाना,- भरते, नम लो शीश धरो॥
अञ्जन जैसा बना निरञ्जन, सीता और सुदर्शन वे।
भविक अगणित भव से तिर गये, जिन्हें मिला जिनदर्शन ये॥ 31॥

(पिंडस्थ-ध्यान)

करें ध्यान पिण्डस्थ मुनीश्वर, आत्म ध्यान में हों लवलीन।
गिरि विराजें, अग्नि धारणा,-करते कर्मों को वे क्षीण॥
जलें कर्म, फिर राख उड़ाये-वायु धारणा तब होती।
नीर धारणा स्वच्छ स्थल कर, तत्त्व-धारणा गुण जोति॥ 32॥

(रूपस्थ और रूपातीत-ध्यान)

चिद्रूपी है मम आतम यह, दर्श ज्ञान मय करें विचार।
ध्यान रहा रूपस्थ महा ये, मोक्ष-मार्ग में है स्वीकार॥
त्रिकाल-शुद्ध निष्कलंकात्मा, सिद्ध-समा जिसमें जाना।
रहा वही शुभ ध्यान परम है, रूपातीत उसे माना॥ 33॥

(शुक्लध्यान)

धुले वस्त्र-सम स्वच्छ व उज्ज्वल, शुचि-निर्मल गुण से परिपूर्ण।
परिमल ऐसा शुद्धात्मा का, शुक्ल-ध्यान होता सम्पूर्ण॥
ऐसी आत्म-विशुद्धि जिसमें, शुक्लध्यान-मय ऐसा जीव।
कर्म-निर्जरा करे, केवली-, बने, मोक्ष को पाता जीव॥ 34॥

(ध्यान-संगोष्ठी में प्रयुक्त पद्य)

नियम व यम संयम से ध्यानी, धर्म, शुक्ल वे ध्यान करें।
केवलज्ञानी योगायोगी, बनकर सम-सुख प्राप्त करें॥
ज्ञानी, ध्यानी की संगोष्ठी, संयम, ज्ञान बढ़ाती है।
मोक्षमार्ग में व्रत चारित से, शिव-सोपान चढ़ाती है॥ 35॥

★★★

श्रीफल जैसे अन्तरंग में, धवल स्वच्छ-मय है भाता।
वैसे ही वह परमध्यान है, महा-विशुद्धि मन लाता॥
जिसको पाकर बने केवली, सर्व-कर्म हैं क्षय करते।
एक समय में लोक-शिखर पर, -जाकर सिद्धालय बसते॥ 36॥

(रक्षा-बंधन-पर्व)

रक्षा बन्धन पर ध्याते हैं, सप्त शतक उन मुनियों को।
विष्णु अकम्पनाचार्य मुनीश्वर, ध्यावें नित उन गुणियों को॥
महोपसर्ग सहा मुनियों ने, अद्भुत अतिशय को पाया।
विष्णुकुमार मुनीश्वर का शुभ, देवों ने प्रिय गुण गाया॥ 37॥

★★★

इस उत्सव में महानन्द ने, सबका हृदय हि भर डाला।
प्रभु श्रेयांश की मोक्ष तिथि पर, अर्हत् भक्तिमय कर डाला॥
भक्ति का इस भू पर मानो, सागर शुभ लहराया है।
जिसने रक्षा भावन भाई, सच्चे सुख को पाया है॥ 38॥

(महापुरुषों की संगत से तिथियाँ भी आदरणीय)

महापुरुष की संगत से या, नेक कार्य के करने से।
तिथियाँ पूज्य कहाती जग में, धर्म-मार्ग पर चलने से॥

तीज व तेरस मुहूर्त्त अच्छा, भविक मानते शुभकारी।
पंचम, सप्तम, ग्यारस के सम, और पूर्णिमा गुणकारी॥ 39॥

★★★

रक्षा सुपूर्ण करे पूर्णिमा, पूर्ण गुणों से भर देती।
सभी कार्य निर्विघ्न करे जो, मंगल सुखमय कर देती॥
पूर्ण चन्द्रसम उज्ज्वल होकर, जगत्-प्रकाशित कर देना।
कहती पूर्ण-चन्द्र की कान्ति, निज में प्रकाश भर लेना॥ 40॥

★★★

एकम इक ही लक्ष्य बनाये, दयामयी जग एक करे।
एक ल्क्ष्य से नहीं डिगें जन, अनेक मंगल नेक भरे॥
द्वितीया में द्विचक्षु मयी वह, अनेकान्त के नेत्र रहें।
अंक दो बहु काज बनाये, साथ बने, सब मित्र कहें॥ 41॥

★★★

रत्नत्रय-गुण कारज तृतीया, त्रिभुवन पूज्य बनाती है।
सदा चतुर्थी चार गति के, दुःख को पूर्ण मिटाती है॥
चउ अनुयोगी ज्ञान बढ़ा शुभ, ज्ञानी हमें बनाती है।
कही पंचमी पांच व्रतों से, पंचम गति ले जाती है॥ 42॥

★★★

षष्ठी षट्-कर्मों से जोड़े, षट् आवश्यक पूर्ण जहाँ।
पालें कर्म-निर्जरा करते, सौख्य मिले सम्पूर्ण वहाँ॥
जहाँ सप्तमी सप्त परम उन,- स्थानों को देती है।
पुण्य खजाना भरे सदा ही, सर्व दुःख हर लेती है॥ 43॥

(सप्त-परम-स्थान)

सप्त परम शुभ स्थानों में, सज्जाति, सद्गृहस्थ पना।
पारिव्राज्य व सुरेन्द्रता फिर, चक्री का साम्राज्य-पना॥
अर्हत्-पद, निर्वाण सप्त ये, पुण्यात्मा भवि पाते हैं।
पुरुषार्थी वे भव-सुख से फिर, शिव-सुख में रम जाते हैं॥ 44 ॥

★★★

अष्टम तिथि जो अष्ट गुणों से, पूर्ण भरे शुभ सुखी करे।
अष्ट कर्म भवि क्षय कर अंतिम,- अष्टम-भू की शान्ति वरे॥
अष्ट-मातृका अष्ट-शुद्धियाँ, आतम को निर्मल करती।
अध्यात्मिक-अवतरणी जीवन,-दिला हि भव सार्थक करती॥ 45 ॥

(अष्ट प्रवचन-मातृकाएँ)

पञ्च समितियाँ तीन गुप्तियाँ, अष्ट सुप्रवचन माता हैं।
माता सदृश रक्षा करती, पुण्य देय सुख दाता है॥
कर्मों का संवर होता वा, जहाँ निर्जरा हो, जानो।
द्वि, त्रि भव या सप्त, अष्ट भव,- में शिव मिलता है मानो॥ 46 ॥

(अष्ट-शुद्धियाँ)

अष्ट-शुद्धियाँ मन-वच-तन वा, भिक्षा, ईर्यापथ शुद्धि।
कही प्रतिष्ठापन शयनाशन, और विनय की जहँ शुद्धि॥
इन्हीं शुद्धियों से मुनिवर की, आत्म शुद्धि निश्चित मानो।
यही विशुद्धि भव-बंधन से-मुक्त करें जिन-मत जानो॥ 47 ॥

★★★

नौवी तिथि अक्षय संख्या है, अक्षय सुख-मय मिलते राम।
सर्व कर्म-क्षय मयी मोक्ष है, जहाँ मिले नित निज-आराम॥

नव-कोटि-सह पाप तजे जो, देवों से पूजा जाता।
नवधा-भक्ति, सेवा से भवि, तीर्थंकर-सुख भी पाता॥ 48॥

★★★

दसवी-तिथि है दस धर्मों की,- जननी, उपकारी जानो।
उत्तम-क्षमादि दस धर्मों वा, धर्म ध्यान सुख दे मानो॥
ग्यारस तिथि ग्यारह प्रतिमा की, शिक्षा नित ही देती है।
उपासकों को मोक्षमार्ग पर, -चला, श्रमण-पद देती है॥ 49॥

★★★

रही द्वादशी, द्वादश तप-मय, जीवन की शिक्षा देती।
त्याग, तपस्या, कर्म-निर्जरा,- करे आत्म शिव पा लेती॥
त्रयोदशी तिथि तेरह चारित,- दीक्षा की शिक्षा वाली।
तेरहवें शुभ गुणस्थान में- देय केवली-पद वाली॥ 50॥

★★★

चतुर्दशी तिथि चौदहवें उस,- गुणस्थान-मय कर देती।
अयोग-केवली बने आत्मा, प्रभुता को है भज लेती॥
रही अमावस , रजनी काली,- दीपावली को याद करें।
रात्रि शोभा दीप बढ़ायें, ज्ञान ज्योति शिव-सौख्य वरे॥ 51॥

(षोडसकारण-पर्व-महिमा)

महापर्व है षोडसकारण, भक्ति, पूजा, दान करो।
सोलह-भावन भाकर भविजन, पुण्य खजाना खूब भरो॥
इसी पुण्य से तीर्थंकर पद,- मिलता, कल्याणक होते।
करें लोक-कल्याण प्रभोजी, शिव-भागी भविजन होते॥ 52॥

(दर्शन-विशुद्धि-भावना)

सम्यग्दर्शन से शोभा हो, जीवन की शुभ जिन-पथ में।
वीतराग-मय देव-शास्त्र-गुरु,- की पूजा हो जिस मत में॥
पञ्च परम जिन परमेष्ठी पर, श्रद्धा दृढ़ हो जाती है।
अष्ट-अंग-सह ज्ञान चरित की,-पराग सुख उपजाती है॥ 53॥

(विनय-सम्पन्नता-भावना)

पूज्य पञ्च शुभ परमेष्ठी व, जैन धर्म व श्रुत में जो।
जिन प्रतिमा व चैत्यालय की, विनय करे रत सुख में वो॥
इसी विनय-सम्पन्न भाव से, मान जाय सम्मान मिले।
सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित-मय, मोक्षमार्ग का बाग खिले॥ 54॥

(शीलव्रतेष्वनतिचार-भावना)

निरतिचार हों शील-व्रतों में, जीवन यह शोभा पाता।
ध्यान शुद्ध हो, मन विशुद्ध हो, निज निर्मलता है पाता॥
शीलवान वह ऊर्ध्व-लोक में, महा प्रशंसित होता है।
स्वर्गों में जा बड़ा सुखी हो, सुर-जन अर्चित होता है॥ 55॥

(अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-भावना)

सदा रहे उपयोग ज्ञान-मय, मन प्रसन्नता पूर रहे।
कर्म-फलों में सहन शीलता, समता सुख भी पूर्ण रहे॥
अभीक्ष्ण-ज्ञानी तथा साथ में, वैरागी-पन शोभित हो।
नहीं अक्ष-विषय में रमता, शिव-पद से वह लोभित हो॥ 56॥

(अभीक्ष्ण-संवेग-भावना)

सदा पाप से डरता है जो, संवेगी कहलाता है।
रत्नत्रय में हर्षित होता, मोक्ष-मार्ग में भाता है॥

मिथ्या-भाव व पाप सदा ही, राज्य-दण्ड दुर्गति देते।
व्यसनादिक को छोड़ भविक वे, सद्गति सुख को पा लेते॥ 57॥

(शक्तितस्त्याग-भावना)

पूर्ण शक्ति सह त्याग करो भवि, शक्ति बाह्य हो त्याग नहीं।
आहारौषध दान करें नित, पुण्य खजाना भरे वहीं॥
सांसारिक वे पदार्थ सारे, नहीं साथ में जाते हैं।
त्याग इन्हीं का इसी लोक में, भार रहित सुख पाते हैं॥ 58॥

(शक्तितस्तप-भावना)

पूर्ण तपों को तपता भवि जो, कर्म-भार घट जाता है।
कर्मों का संवर भी होता, पुण्यकोष भर जाता है॥
स्वर्गों में जाकर जो धर्मी, बड़े सुखों को पाता है।
नर हो तप से कटें कर्म सब, पूर्ण सुखी हो जाता है॥ 59॥

(साधु-समाधि-भावना)

मोक्षमार्ग पर चलें मोक्ष-पद,- मिले, अतः मुनि दीक्षा हो।
रत्नत्रय नित रहे सुरक्षित, अतः साधु परिरक्षा हो॥
हो विहार, आहार साधु का, सदा साथ रहें सब लोग।
महा-पुण्य से सद्गति में जा, सौख्य सदा हि पायें लोग॥ 60॥

(वैयावृत्तकरण-भावना)

वैयावृत्ति धर्मीजन की, गुण पाने भविजन करते।
सभी सुखी हों धर्म-वृद्धि हो,- पुण्य-खजाना वे भरते॥
सल्लेखन में सेवा जिनकी, अनुभव बहुत बढ़ाती है।
मोक्ष-मार्ग में रत्नत्रय से, शिव-सोपान चढ़ाती है॥ 61॥

(अर्हत्-भक्ति-भावना)

अरहंतों की महा भक्ति जो, अतिशय मय-शुभ पुण्य भरे।
तीर्थंकर पद देय भक्ति वह, पूर्ण विश्व को धन्य करे॥
कल्याणक वे उत्तम-वैभव, जिनमहिमा दर्शाते हैं।
श्रद्धा-भक्ति जगत् करे नित, समदर्शी बन जाते हैं॥ 62॥

(आचार्य-भक्ति-भावना)

आचार्यों की श्रद्धा-भक्ति, सदाचार निर्मल रखती।
गुण-वृद्धि कर भव्य जनों को, शांति दिला सुख से भरती॥
पंचाचार धारते गुरुवर, दर्शन-ज्ञान, चरित, तप में।
तथा वीर्य जो आत्मिक शक्ति,- हों उत्साही,वे जिसमें॥ 63॥

(बहुश्रत-भक्ति-भावना)

द्वादशांग के ज्ञानि जनों का, गुणानुवाद अभिनन्दन हो।
उनके सदृश गुणगण पाने, नित-प्रति, पद में वंदन हो॥
महापुण्य से सद्गुरुओं के प्रवचन भव्यों को मिलते।
बहुश्रुतधारी उपाध्याय से, सुमार्ग चल भवि भव तिरते॥ 64॥

(प्रवचन-भक्ति-भावना)

प्रवचन-भक्ति करें शास्त्र का,- मंगल-वंदन शुभ होता।
पुण्य बढ़े फिर सदा आत्म में, ज्ञान क्षयोपशम है होता॥
आज पठित वह ज्ञान भले ही, विस्मृत भी हो गर मानो।
अगले भव में स्मृत हो, भवि, -केवलज्ञानी हो जानो॥ 65॥

(आवश्यकापरिहाणि-भावना)

आवश्यक को यथाकाल में, पालें भविजन पूर्ण सदा।
नहीं प्रमादी बनकर कोई, कमी करें न भूल कदा॥

समता आदिक आवश्यक वे, उत्साहित हो पूर्ण करें।
जिनवर पूजा, गुरु सेवादिक,- करें, गुणों का कोष भरें॥ 66॥

(मार्ग-प्रभावना-भावना)

मोक्ष-मार्ग की प्रभावना में, जीवन अपना अर्पण हो।
सदाचरण भी पूर्ण-लोक में, सब भव्यों को दर्पण हो॥
ज्ञान, तपः वा दान साथ में, जिन-पूजा भी नित करना।
मिथ्यादर्शन-ज्ञान हरण कर, जिन-शासन से हित करना॥ 67॥

(प्रवचन-वत्सल्य-भावना)

प्रवचन में वत्सल हो नित ही, परोपकार के पुष्प खिलें।
अतिशयकारी पुण्यार्जित हो, सद्गतियों के सौख्य फलें॥
यही अकृत्रिम-नेह सभी को, तीर्थंकर-पद देता है।
अपनी दिव्य-ध्वनि से जग का, सर्व दुःख हर लेता है॥ 68॥

(चा.च. आचार्यश्री शांतिसागर समाधि-दिवस)

वर्तमान में प्रथम हुये जो, चारित चक्री कहलाये।
शान्तिसागराचार्यश्री के,- महा-गुणों को हम गायें॥
समाधि-दिवस को सभी मनायें, उनके उत्तम गुण पायें।
उन जैसे दृढ़-चारित, तप अरु,- समाधि-सुख में रम जायें॥ 69॥

(दस-लक्षण-पर्व-महिमा)

दशलक्षण है महापर्व ये, मन में खुशियाँ भरता है।
त्याग, तपों से आत्म-शुद्ध कर, जीवन सुखमय करता है॥
तीर्थंकर के धर्म-मार्ग की, प्रभावना नित होती है।
गुरु-सेवा, गुरुओं की वाणी, पाप-कर्म को धोती है॥ 70॥

(उत्तम-क्षमा-धर्म)

क्रोध जीतकर क्षमा-भाव से, उत्तम धर्मों का पालन।
जिसके जीवन में होता है, पापों का सब प्रक्षालन॥
भव्य बन्धुओ! ऐसे क्षण ये, महा-पुण्य से मिलते हैं।
महा-पुण्य से भरे भविक-गण, धर्म गुणों से सजते हैं॥ 71॥

(उत्तम-मार्दव-धर्म)

मान-गलन से धर्मी मानव, मार्दव-धर्मी बन जाता।
विनीत-गुण सह लोक जनों के-बीच प्रशंसा नित पाता॥
पात्र-झुके जब नीर सतह पर, जल से पूरित हो जाता।
कुछ त्यागे तब सब कुछ मिलता, धर्म-गुणों से भर जाता॥ 72॥

(उत्तम-आर्जव-धर्म)

धर्म-आर्जव पाता उत्तम, सहज, सरल जो होता है।
माया-छल का त्याग हृदय से, पूर्ण जहाँ पर होता है॥
देश, समाज वा प्रियजनों में, जो निश्छल व्यवहार करे।
वही धर्म की रक्षा करता, पूज्य बने भव-पार करे॥ 73॥

(उत्तम-शौच-धर्म)

मन, वच, तन की शुचिता को ही, शौच-धर्म माना जाता।
ग्लानि छोड़ो, तजो लोभ अरु,-पर-पदार्थ जिनसे नाता॥
आशा, तृष्णा अग्नि-कुण्ड-सम, नहीं भरे वह ईंधन से।
छोड़े ममता जग विषयों से, हो संतोषी सम-धन से॥ 74॥

★★★

(उत्तम-सत्य-धर्म)

जो विश्वास बढ़ाता उत्तम, सत्यधर्म कहा जाता।
इसी धर्म में सच्चा सुख है, विजय-पताका फहराता॥
सज्जन लोगों से यतिवर वे, हितकारी शुभवचन कहें।
न्याय-नीति से चलें भविक सब, शिव-पथ से शिव सौख्य लहें॥ 75॥

★ ★ ★

सज्जन-जन के बीच सुशोभित, होते मुनिवर जग न्यारे।
हितकारक वाणी से बोलें, प्रिय-वचन सब दुःख हारे॥
सत्य धर्म से जगत् प्रशंसित, होते भविजन जग प्यारे।
सत्य वचन से श्रद्धा कारक, बने कार्य सब शुभ सारे॥ 76॥

(उत्तम-संयम-धर्म)

महामुनीश्वर सब जीवों पर, करुणा-मय शुभ-भाव धरें।
त्रस, थावर हिंसा से विरहित, राग-द्वेष परिहार करें।
सर्व प्रशंसित आवश्यक वे, संयमित होकर नित्य करें।
बिना प्रयोजन क्रिया नहीं हो, शुभ ध्यानों में चित्त धरें॥ 77॥

(उत्तम-तप धर्म)

सदा मोक्ष का लक्ष्य बनाकर, बारह-तप जो तपता है।
कर्मों का संवर कर उत्तम, कर्म-निर्जरा करता है॥
उपवासादिक महा-तपों को,-तपे महा-भाग कहिये।
लोक प्रशंसित ऐसा भवि वह, पुण्यात्मा-सम सब रहिये॥ 78॥

(उत्तम-त्याग-धर्म)

अल्प-त्याग भी स्वर्गिक सुख को, देता भविजन पहचानो।
निर्भय होकर व्रत, संयम को, धारो होय सुगति जानो॥

कर्म-निर्जरा-संख्य गुणित हो, आत्म विशुद्धि जब होती।
बढ़े ध्यान सम्यक् वह यति का, विधि अञ्जन को जो धोती॥ 79॥

(उत्तम-आकिञ्चन्य-धर्म)

आकिञ्चन्य महान-धर्म है, इसमें किञ्चित संग नहीं।
नहीं मोह वा विषय-वासना, जन-मन-रञ्जन रंग नहीं॥
एक मात्र यह आत्म हमारी, ज्ञान-दर्श-मय पूर्ण यहाँ।
ध्यानी बनकर आत्मसिद्ध कर, शिव पायें सम्पूर्ण जहाँ॥ 80॥

(उत्तम-ब्रह्मचर्य-धर्म)

सप्त-व्यसन का त्याग करे फिर, ब्रह्मचर्य-व्रत लेता जो।
पर-स्त्री को माता, भगिनी, पुत्री-सम ही समझे वो॥
महिला भी वह पर पुरुषों को, पिता, पुत्र, सुत-सम माने।
कहा ब्रह्मचर्य व्रत धारी, आगम ऐसा शुभ जाने॥ 81॥

(रत्नत्रय-व्रत-पर्व)

रत्नत्रय का पर्व मनाने, रत्नत्रय-व्रत आप धरें।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान व्रतों से, मोक्षमार्ग सुख प्राप्त करें॥
लौकिक-रत्न भले मौलिक हैं, नश्वर वे कहलाते हैं।
अमूल्य, अलौकिक रत्नत्रय वे, आत्मिक मोक्ष दिलाते हैं॥ 82॥

(क्षमा-वाणी-पर्व-भावना)

सभी हृदय में पूर्ण रूप से, क्षमा-भाव यह नित्य रखें।
सभी हृदय में कभी भूल से, बैर भाव वह नहीं रखें॥
घड़ी-मात्र में ज्ञानी जन वे, क्रोध शमन कर लेते हैं।
अज्ञानी वे राग-द्वेष से, बैर सदा रख लेते हैं॥ 83॥

★★★

क्रोध खटाई–सम होता है, बैर अचार कहा जाता।
धर्मी मानव क्रोध करे न, क्षमा–भाव मन में लाता॥
कितनी भी बाधायें आवें, समता रख प्रभु को ध्याता।
ऐसा मानव सरल स्वभावी, स्वर्ग सुखी हो, शिव पाता॥ 84॥

★★★

सदा क्षमा ही भाव रहे नित, नहीं बैर मन में रखना।
ना बदले का भाव रहे वह, सब हितकर मानस् रखना॥
क्षमा मांगना सरल समझलो, करना क्षमा वीर का रूप।
क्षमा याचना के पहले हम, करें क्षमा, वह धर्म स्वरूप॥ 85॥

★★★

क्षमा; वीर का आभूषण है, आत्म सु–शोभा है बढ़ती।
बैरी भी वे मित्र बनें सब, आत्मीयता है बढ़ती॥
सुख–दुःख में भी हिल–मिल रहते, नहीं कपट न छल होता।
धर्म–प्रभावना, बढ़े भावना, मोक्षमार्ग परिमल होता॥ 86॥

(विमानोत्सव-रथयात्रा)

नगर विमानोत्सव जिनवर का, बड़ी उमंगें शुभ लाया।
जन–जन में हो प्रभु–गुणगायन, महानन्द दिल में छाया॥
जय–जय की ध्वनि से गुंजित हो, जग में खुशियाँ भर लाया।
धर्म–दीपकों से हर घर का, आंगन ज्योतिर्मय भाया॥ 87॥

★★★

गाजे–बाजे रजत–पालकी, रजत–मयी जिनरथ आया।
नाचें, गायें युवा साथ में, साधु–संघ भी जँह पाया॥

धर्म-ध्वजायें केशरिया हैं, स्वर्णिम नीर कलश भाया।
चमर, छत्र सिंहासन प्यारे, भव्यों का मन हर्षाया॥ 88॥

★★★

शान्तिनाथ हैं अतिशयकारी, कुन्थुनाथ जी मन हरते।
अरहनाथ-जिन कर्म-हरें वे, चौबीसों प्रभु गुण भरते॥
बीस तीर्थ-कर शिव को दें वा, सिद्ध अनन्तों सुख देते।
नव-देवों को नित-प्रति नमते, निज सम हमको कर लेते॥ 89॥

★★★

यही विमानोत्सव वैमानिक,-स्वर्ग-लोक में ले जाता।
अगले भव में तीर्थंकर के, समवसरण का सुख पाता॥
जग-उद्धारक, जग-कल्याणक वाणी से भविजन सजते।
जैन-धर्म के उत्तम-पथ से, भव-समुद्र भविजन तरते॥ 90॥

(शिक्षा-संस्कार)

शिक्षा है आधार-शिला यह, उन्नति शिखरों की जानो।
धर्म रहे संस्कार मणि-सम, -सदाचार का शुभ मानो॥
सदाचार वा सद्विचार ये, सबको स्वर्ग दिलाते हैं।
मोक्ष-मार्ग पर चला हमें फिर, शिव का सौख्य जगाते हैं॥ 91॥

(पाठशाला-सम्मेलन)

संस्कारों से संस्कृति रक्षा,-होती सुख से भर देती।
जैन-धर्म यह रहे सुरक्षित, पावन होती फिर धरती॥
जहाँ साधुओं का विहार हो, शुभ आते हैं तभी विचार।
चलें पाठशालाएँ जिनसे, भरता रग-रग में संस्कार॥ 92॥

★★★

मात-पिता, गुरु जिन वचनों से, भविजन अनुभव बढ़ जाते।
पूज्य, बड़ों की सेवा से सब, उत्तम गुण उनके पाते॥
संयम जब जीवन में आता, लोक-पूज्यता भवि पाते।
धर्म-क्रियायें पुण्य भरे तव,-सद्गति सुख जीवन पाते॥ 93॥

(संस्कार-भावना)

दीक्षा ले यह महा पुण्य है, या हों श्रावक भाग्य रहा।
धर्म संतति चले भाव बस, यही परम सौभाग्य रहा॥
संतानें गर मोक्षमार्ग में, जायेंगी रथ धर्म चले।
अथवा जैनी-पन पालन हो, कर्त्तव्यों में आत्म ढले॥ 94॥

★★★

गर्भकाल में भोज्य शुद्ध जब, धार्मिक होते शुद्ध विचार।
जिन-दर्शन पूजन सु-पाठ हो, जपे मंत्र माता नवकार॥
मेरी संतति मुनि, आर्यिका-बने मात सुविचार करे।
होनहार हो सद् विचार हों, -पुत्र, जगत् उपकार करे॥ 95॥

★★★

मम सुत जन्मा मंत्र सुनाती, माँ सहलाती उर में देख।
बड़ा होय तब साधु बनेगा, तीर्थंकर सम इसकी रेख।
ऐसा लगता नाम करेगा, जग में कुल का भारी यह।
जिनवर पूजा कर,- मुनि सेवा, महा पुण्य का भागी यह॥ 96॥

★★★

मेरी संतति मातृभूमि में, संस्कारों को पायेगी।
माँ की आज्ञा शिरोधार्य कर, पिता कुलीन कहायेगी॥

उत्तम कृषि, मध्यम व्यापारी-, बने, दान में आगे हो।
नहीं नौकरी कर, नौकर हो, गांव छोड़ न भागे वो॥ 97॥

★★★

मात-पिता की नजरों में रह, शुद्ध भोज्य व जल होगा।
जल गालन, दिन में भोजन कर, जिन कुलीन उज्ज्वल होगा॥
गृह परिजन व मात पिता की, सेवा में तत्पर होगा।
धर्म-गुरु की रक्षा में सुत, कहे बिना ही रत होगा॥ 98॥

★★★

मात-पिता गर नौकर रखते, सुत रक्षा नौकर करते।
न स्नेह मिले माता का, बाह्य गमन फिर सुत करते॥
रहता न स्नेह उन्हें भी, मात-पिता व स्वजनों से।
मात्र वासना रुपया पैसा, बड़ा ही लगता स्वजनों से॥ 99॥

★★★

बाहर जा, बाहर के होते, निज घर को ही वे भूलें।
संस्कार को भी भूलें वे, व्यसनों में रत हों फूलें॥
मात-पिता गर कष्टों में हों, न परवाह उन्हें रहती।
कहें वहीं से टाटा वे तो, उनमें करुणा न पलती॥ 100॥

★★★

बच्चे कहते मुझे आपने, नौकर के कर सौंपा था।
आज मुझे भी नौकर भाते, मिला नेह न मौका था॥
बाहर आकर नाता मुझको, यही किसी से भाया है।
यही रहूँगा निश्चित, मैं तो, ऐसा मन में आया है॥ 101॥

★★★

मेरा जीवन साथी मैंने, यहीं देखकर बना लिया।
मेरे वश में पैसा अब तो, जो मैंने यह कमा लिया॥
मात-पिता से दूर ही मुझको, रहना अच्छा लगता है।
बाहर का वह फास्ट-फूड ही, रुचिकर मुझको लगता है॥ 102 ॥

★★★

जैन लोग तो बहुत ही कम हैं, अजैन अच्छे लगते हैं।
भौतिकता के युग में अब तो, धर्मी फीके लगते हैं॥
जैन धर्म से आस्था उनकी, पूर्ण खत्म हो जाती है।
बीबी, टी.वी., मोबाइल-धुन, सवार जब हो जाती हैं॥ 103 ॥

★★★

सारे सपने मात पिता के, झूठे वे हो जाते हैं।
दुःख दर्द में या मृत्यु में, नहीं काम सुत आते हैं॥
लगता ऐसे सुत को मैंने, ना ही जन्म दिया होता।
ना सेवा ना खर्चा होता, ना ही कर्ज लिया होता॥ 104 ॥

★★★

क्यों मैंने ये लगन रचायी, किसके खातिर कमाई की।
किससे मैंने आस लगाई, किसके संग हि रुलाई की॥
ना कोई सुत-सुता दूर हो, अपने मात-पिता से जान।
मात पिता सह धर्म-कर्म हों, सबका गृह हो स्वर्ग समान॥ 105 ॥

★★★

संस्कारों का खूब हो, हर-गृह में शुभ-मेल।
कभी न फिर रहती वहाँ, भौतिकता की जेल॥ 106 ॥

★★★

भौतिकता में सुख नहीं, सुख देता है धर्म।
पूज्य-गुरु का अनुशरण, होय करो वह कर्म॥ 107॥

★★★

संस्कार का नित्य ही, पालन हो तब जान।
शुभ-गति पाकर शीघ्र ही, होगा शिव-कल्याण॥ 108॥

★★★

मात-गुरु फिर धर्म गुरु, रहें सभी के पास।
'आर्जव' बन भव पार हों, प्रभु रहें फिर पास॥ 109॥

(अपना अभिमत किसको दें)

अपना अभिमत उसको होगा, धर्म सुरक्षक जो होगा।
अपना सुहृद भी वह होगा, धर्म अहिंसक जो होगा॥
अपना हितकर वही रहेगा, सदाचार युत जो होगा।
अपना उद्धारक वह होगा, मोक्षमार्ग में रत होगा॥ 110॥

(समवसरण-भावना)

तीन लोक का अद्भुत वैभव, समवसरण जग में न्यारा।
जन-जन का कल्याण करे जो, भव्यों को अतिशय प्यारा॥
समवसरण की शरण में आकर, तीर्थंकर गुण गायें सभी।
जिनवाणी सुन मोक्ष मार्ग पा, शिव पा, भव न पायें कभी॥ 111॥

★★★

तीर्थंकर ने समवसरण का, वैभव हमको बतलाया।
दिव्यध्वनि सुन गणधर प्रभु ने, समवशरण का गुण गाया॥
सौधर्मेंद्र ने आज्ञा देकर, समवसरण जो रचवाया।
इंद्र कुबेर से पावन वैभव-देख लोक सब हर्षाया॥ 112॥

★★★

भव्य जीव वे समवसरण पा, निज कल्याण किया करते।
सम्यग्दर्शी बने तत्त्व पर, श्रद्धा रख सुख को वरते॥
बने विवेकी चारित गहते, मोक्ष पथिक वे कहलाते।
कर्म निर्जरा करें; धर्म से, निज चेतन को नहलाते॥ 113॥

★★★

भाग्यवान को समवसरण का, दर्शन हो यह सब जानो।
महापुण्य से दिव्यध्वनि का, लाभ मिले यह भवि जानो।
जन्म-जन्म का पुरुषार्थी वह, उत्साही हो जिनधर्मी।
तीर्थंकर की शरण गहे वह, श्रद्धायुत शुभ षट्कर्मी॥ 114॥

★★★

समवसरण यह अद्‌भुत कृति है, लोक भविक को कल्याणी।
जग उद्धारक जिसमें खिरती, शांति प्रदायी प्रभु वाणी॥
सर्व दुःखों के हरण हेतु वे, शरण गहें जग के प्राणी।
सुख पाते हैं ज्ञान चरित पा, नर सुर हो या मुनि ध्यानी॥ 115॥

★★★

समवसरण की चौबीसी को, भाव सहित जो नमते हैं।
निकट भव्य वे अल्पकाल में, मोक्ष महासुख वरते हैं॥
चौबीसी मय समवसरण के, बिम्ब रत्नमय शोभ रहे।
कर्म नशाते, पुण्य बढ़ाते, सद्‌गति दे मन मोह रहे॥ 116॥

★★★

कर्म निधत्ति और निकाचित, जिन दर्शन से नश जाते।
तीर्थंकर सब प्रकृति बंध हो, दोय केवली मिल जाते॥

सभी विघ्न बाधायें टलती, सुखसागर में रम जाते।
समवशरण के दर्शन से सब, भविजन भव से तिर जाते॥ 117॥

★★★

समवसरण का धूलिसाल वह, परकोटा अतिशय शोभे।
विजयादि चउ द्वारों से वह, भव्य जनों का मन मोहे॥
श्रद्धा के बिन इस परकोटे-के भीतर न मिले प्रवेश।
तीर्थंकर पर श्रद्धा जागे, मार्ग खुले वह उसे विशेष॥ 118॥

★★★

समवसरण का मानस्तंभ वह, सबका मान गला देता।
विनम्रता सह समदर्शी बन, भविक धर्म शिक्षा लेता।
जहाँ सरोवर भूमि खातिका, बाग नाट्यशालाएँ हों।
उपवन भव सह मणि वेदिका, ध्वजा भूमि गुण गायें जो॥ 119॥

★★★

कल्पवृक्ष वे मनवांछित सब, वस्तु प्रदाता शोभ रहे।
जहँ- स्तूप व प्रसाद भी वे, सबके मन को मोह रहे॥
कमल दलों से सभाएँ बारह, त्रि कटनी के निकट रहीं।
मुनि नर सुरादि धर्म बढ़ाते, सद्‌गुण सुरभि छिटक रही॥ 120॥

★★★

धर्म-चक्र सु-मंगल मय उन, प्रातिहार्य की शोभा हो।
कमल सहस्रदली सिंहासन, ने सबका मन मोहा हो॥
शोक नाशाता अशोक तरु वह, भामंडल में भव दिखते।
छत्र चमर सह ईश्वर जग में, दिव्यध्वनि सह प्रभु लसते॥ 121॥

गणधर वाणी द्वादशांग मय, सब हितकारक होती है।
वाद्य ध्वनि से जनता सुखकर, सुकून पाय सुख जोती है॥
चहुँ दिशाओं से प्रभुवर का, दर्शन सबके पाप हरे।
वीतराग 'आर्जवमय' मूरत, समवसरण जय धन्य करे॥ 122॥

★★★

समवसरण मण्डल रचा, चौबीसी सुविधान।
समवसरण की भावना, लिख दी हो कल्याण॥ 123॥

★★★

सम्यग्दर्शन से मिले, स्वर्ग सौख्य संपूर्ण।
विदेह आदि में दर्श हो, समवसरण का पूर्ण॥ 124॥

★★★

समवसरण सब जीव का, शरण रहा यह जान।
यही शरण सुख मार्ग है, प्रभु उपदेश महान॥ 125॥

★★★

समवसरण का नित्य ही, करें भविक जो ध्यान।
भवसागर को पार कर, पाते शुभ कल्याण॥ 126॥

★★★

(धन्य-त्रयोदशी-धनतेरस दीपावली)

धन्य त्रयोदशी वीर प्रभो ने, योग-निरोध किया पावन।
पावापुरी में ध्यान लगाकर, भस्म किया विधि का कानन॥
समवसरण-बहिरंग श्री को, छोड़ दिया था प्रभुवर ने।
मोक्ष-लक्ष्मी को पाया फिर, शिव-सुख पाया जिनवर ने॥ 127॥

★★★

चार प्रहर के बाद हि देखो, गणधर-प्रभु की आतम में।
शुक्ल-ध्यान से ज्ञानसु-केवल, दीप जला, निज-चेतन में॥
देव-गणों ने केवल ज्योति, की श्रद्धाञ्जलि प्रभु को दी।
महा-दीपकों की ज्योति से, नभभूमि जग-मग कर दी॥ 128॥

★★★

कार्तिक कृष्णा अन्त समय में, पर्व मनाया जब जाता।
दीपावली पर वीर-मोक्ष का, दीप जलाया तब जाता॥
गणधर की वह ज्ञान-लक्ष्मी, सबके मन को भाती है।
ज्ञान, लक्ष्मी भरे हृदय में, आतम निज-सुख पाती है॥ 129॥

(पिच्छिका-परिवर्तन)

मयूर-पंख की बनी पिच्छिका, लघु, मृदु, कोमल, सुन्दर है।
धूल, पसीना, ग्रहण करे ना, जीव बचें गुण अन्दर हैं॥
अश्विन, कार्तिक माह अन्त में, मयूर पंख झड़ा देता।
मानो मुनियों के कारज वह, मृदुल पंख सदा देता॥ 130॥

★★★

मयूर-पंख वे समिति क्रिया में, जीव बचाने साधन हैं।
जिसकी वस्तु लगे धर्म में, उसका जीवन पावन है॥
नहीं कदा ही मयूर को वह,-कष्ट रंच भी होता है।
वह तो नाचे महाव्रती लख, हर्ष उसे नित होता है॥ 131॥

★★★

पिच्छि परिवर्तन के कारज, लोग बहुत जहँ आते हैं।
देख उपकरण संयमी जन का, खुशियाँ खूब मनाते हैं॥

वर्ष मात्र में इक दिन देखो, यह परिवर्तन होता है।
संयम लेने वालों को यह, महा-पुण्य सुख देता है॥ 132॥

★★★

आज पिच्छिका देते जो भी, बाद पिच्छिका उन्हें मिले।
साथ कमण्डलु उन्हें मिले जब, संयम सुरभि वहाँ खिले॥
साधु संघ के इक माही भी, विहार में जो साथ चलें।
चातुर्मास कराने-सम ही, पुण्यानुबन्धि पुण्य मिले॥ 133॥

(अष्टाह्निका-पर्व-महिमा)

कार्तिक, फाल्गुन, अषाढ़ में शुभ, आष्टाह्निक का पर्व महा।
नन्दीश्वर के बावन मंदिर, देव पूजते नित्य जहाँ॥
नन्दीश्वर के जिनालयों के, सह पूजन जिन-बिम्बों की।
सिद्धचक्र उन सिद्धों की भी, पूजा सद्गुण-धर्मों की॥ 134॥

(सिद्धचक्र-महिमा)

सिद्धचक्र की आराधन हो, अनंत सुख का अभिनंदन।
अनंत गुणों की उपलब्धि हो, अनंत सिद्धों को वंदन।
एक सिद्ध के सभी प्रदेशों, में अनंत सिद्ध वसते।
मुख्य अष्ट गुणों से मण्डित, सिद्धालय में प्रभु लसते॥ 135॥

★★★

सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों सह, अनंत शक्ति के धाम रहे।
दर्श-ज्ञान से पूर्ण विश्व को, जाने, केवलज्ञान रहे।
तीन लोक के मस्तक पर जो, शिखामणि सम कहलाते।
एक हजार आठ नाम शुभ, क्षेमंकर सबको भाते॥ 136॥

★★★

धर्मी नारी मैनासुंदरि, शुभ लक्षण जिसने पाए।
नित्य रात-दिन जिसने पति की, सेवा कर प्रभु गुण गाए।
पहुपाल ने कोड़ी के संग, विवाह जब वह रचवाया।
नहीं ग्लानि कर धर्मी के संग, सेवा भाव जिसे भाया॥ 137॥

★★★

''मैं'' ना सुंदरी कहने वाली, नहीं रूप अभिमानी थी।
कुष्ठ रोगियों के रोगों को, हरा जु सुखद कहानी थी।
मुनिवर के उपदेश मात्र से, जिसने मण्डल रचवाया।
श्रीपाल वे हुए निरोगी, भोग तजे; संयम पाया॥ 138॥

★★★

मैनासुंदरी की भक्ति ने, कर्म बंध को शिथिल किया।
सिद्धचक्र की आराधन से, रोग हरा भव सफल किया।
श्रीपाल वे संयम पालक, स्वार्थी-जग से पार हुए।
आत्मिक बल से भव समुद्र को-लांघ; सदा जयकार हुए॥ 139॥

★★★

ध्यान लगाकर कर्म शत्रुओं-, को जीता साधु बनकर।
नहीं रमे वे राज्य भोग में, न डूबे स्वादु बनकर।
अतिशय वैरागी बनकर फिर, वन में जा शुभ ध्यान किया।
पाकर केवल ज्ञान श्री फिर-मोक्ष श्री का वरण किया॥ 140॥

★★★

धर्म गुणों के संस्कार से, मैना-सुंदरि पूर्ण रही।
श्रद्धा रखकर वीतराग में, भक्ति से संपूर्ण रही।

गुरु आशी-व्रत पाए, जिसका- पावन जीवन धन्य हुआ।
ऐसी उत्तम आराधन का, नहीं उदाहरण अन्य हुआ॥ 141॥

★★★

सिद्धों की अर्चा पूजा से, पाप पलायन हुआ विशेष।
नहीं रहा था पूर्व जन्म के, मुनि निंदा का कर्म जु शेष।
वीतराग की भक्ति मात्र ही, देती सुख, न रागी की।
जंगल में भी रक्षा होती, महा पुण्य के भागी की॥ 142॥

★★★

मैना-सुंदरि ख्यात जो, सिद्धचक्र के काज।
सिद्ध हुए श्रीपाल भी, श्री-पालक वे राज॥ 143॥

★★★

सिद्ध सु-चक्र विधान से, सर्व मिटें संताप।
'**आर्जवता**' से शिव मिले, दें सिद्धों का जाप॥ 144॥

(षोडस-कारण-पर्व-माहात्म्य)

माघ, चैत्र व भाद्र माह में, षोडसकारण पर्व महा।
दर्शन-विशुद्धि आदिक भावन, भाते हैं वे भव्य जहाँ॥
तीर्थंकर शुभ प्रकृति बंध में, सोलह-भावन कारण हैं।
मोक्ष-महल की रहीं सु-उत्तम, पावन-पवित्र साधन हैं॥ 145॥

(प्रथम-तीर्थ-भावना)

रत्न सु-धारा देव-लोक से, बही अयोध्या सुन्दर मान।
स्वर्णिम नगरी लोक-प्रशंसित, -महल सर्वतोभद्र महान॥

चौरासी-मंजिल शुभ-गृह में, गर्भित हुई मरुदेवी माँ।
देव-देवियों से शोभित थीं, धर्म-ध्यान में तत्पर माँ॥ 146॥

★★★

स्वप्न भी सोलह देखे माँ ने, फल पूछा था राजन् से।
होनहार बालक लक्षण सुन, हर्ष हुआ गुण पावन से॥
शुभ-मुहूर्त्त में प्रभो जन्म पर, अपार खुशियाँ छायीं थी।
देव-लोक में घण्टे बाजे, वर्षे रत्न, शहनाई थी॥ 147॥

★★★

इन्द्र ऐरावत गज पर बैठा, -कर सवार पूरा परिवार।
नगर अयोध्या में आया तब, झूम उठा था सब परिवार॥
करोड़ वाद्यों के शब्दों-सह, गये मेरु पर, प्रभु राजे।
क्षीरोदधि का जल जहँ लाया, कलश ढले, प्रभुवर साजे॥ 148॥

★★★

क्षीरोदधि का उत्तम लाया, देवों ने वह जल अभिषेक।
सब इन्द्रों में प्रधान था वह, सौधर्मेन्द्र हि जहाँ विशेष॥
ईशानेन्द्र की जोड़ी के संग, प्रधान इन्द्र ने प्रभु को बीच।
पीठासन पर बिठा स्वयं फिर, स्थित हो इन्द्रों के बीच॥ 149॥

★★★

मात्र जोड़ी-सह दो इन्द्रों ने, प्रभु का न्हौन कराया था।
सर्व देव परिचारक थे वे, पुण्य-भाग्य को पाया था॥
जहाँ अप्सराओं ने प्रभु के, मंगल-गायन गाये थे।
लखा अंगूठे में लाञ्छन तब, ऋषभ देव कहलाये थे॥ 150॥

★★★

शचि ने रत्न-अलंकारों से, प्रभु को खूब सजाया था।
नहीं खुशी का पार रहा तब, ताण्डव नृत्य रचाया था॥
इन्द्रों का शुभ नृत्य देखकर, चकित हुआ था पूर्ण जहान।
जिन-बालक सह सुर क्रीड़ा से, बाल्य बने सब गुण की खान॥ 151॥

★★★

आये थे प्रभु देव-लोक से, रत्न झड़े, सत्कार हुआ।
जग-जीवों को एक समय में, युगपत् सुख संचार हुआ॥
रूप लोक में भाया सुन्दर, हर्ष भी अपरम्पार हुआ।
आप श्री से अगणित भव्यों, - का मंगल उद्धार हुआ॥ 152॥

★★★

गर्भ-पूर्व के छहों माह फिर, नव-मास भी अब पाये।
पंद्रह माहों तक देवों ने, सुरत्न उत्तम वर्षाये॥
चौदह कोटि जहँ रत्नों को, इस भू पर वर्षाया था।
राज्य बसे उन मानस जन का, रोम-रोम हर्षाया था॥
रत्न बटोरे सर्व प्रजा ने, अतिशय माला-माल हुए।
प्रभु सुख लाये, प्रभु-गुण गाये, हम सब अभी निहाल हुए॥ 153॥

(ऋषभदेव-वैभव)

आदिनाथ की स्तुति करने, सविनय गुण-गण करूँ बखान।
नाभिराय मरुदेवी नन्दन, कुलकर-कुल के दीप सुजान॥
प्रथम तीर्थ-कृत ऋषभदेव वे, भरत, बाहुबली पिता महान।
नन्दा और सुनन्दा पत्नि, इक सौ द्वि जिनकी सन्तान॥ 154॥

★★★

नन्दा के सुत भरतादि सौ, ब्राह्मी एक सुता पहचान।
और सुनन्दा पत्नी के वे, थे बाहुबली पुत्र महान॥
तथा सुन्दरी पुत्री जिनकी, विद्या उत्तम जिसे मिली।
भरत हि प्रथम चक्रवर्ती थे, कामदेव थे बाहुबली॥ 155॥

★★★

ऋषभ-देव ने ब्राह्मी को दी, लिपि सुविद्या सौम्य भली।
द्वितीय पुत्री श्रेष्ठ सुन्दरी, अंक सुविद्या जिसे मिली॥
भोग-भूमि से कर्म-भूमि में, आये उद्यम को सीखा।
कृषि करो या ऋषि बनो अरु, वर्ण बनाना भी सीखा॥ 156॥

★★★

असि, मसि, कृषि, वाणिज्य सुविद्या, शिल्प छहों इन कर्मों को।
ऋषभ-देव ने यहाँ बताया, न्याय सहित सत् कर्मों को॥
ब्रह्मचर्य ले पुत्री द्वय ने, पूज्य-पिता सम्मान किया।
अन्य, पिता से ऊँचा न हो, अतः निजी न विवाह किया॥ 157॥

★★★

अयोध्या का वह राज्य दिया था, भरत-पुत्र को शुभकारी।
बाहुबली को पोदनपुर का,- राज्य दिया था हितकारी॥
भरत नाम से आर्यखण्ड का, भारत यह शुभ नाम हुआ।
भरत ने वर्ण व्यवस्था दी जब, पूर्ण व्यवस्थित काम हुआ॥ 158॥

★★★

नीलाञ्जना के नृत्य मध्य में, मृत्यु का जो दृश्य दिखा।
असार है संसार ही सारा, क्षणिक भोग हैं तभी लखा॥

जगत् विनश्वर के चिंतवन से, प्रभु वैरागी बने महान।
प्रथम रूप से दीक्षा लेकर, संयम तप मय जिनकी शान॥ 159॥

★★★

लौकान्तिक देवों ने आकर, धन्य-धन्य कह नमन किया।
स्वर्गिक इन्द्रों ने आकर के, उठा पालकी गमन किया॥
वन में जाकर प्रभु ने अपने, वस्त्राभूषण त्याग दिये।
केश-लोंच कर पञ्च मुट्ठी से, पञ्च महाव्रत धार लिये॥ 160॥

(अक्षय हुआ आहार (अक्षय-तृतीया))

छह-मास उपवास ध्यान कर, -प्रभु जी निकले चर्या को।
था अन्तराय-कर्म प्रभु का, ना बदला निज-चर्या को॥
एक वर्ष इक माह नव दिनों, -बाद प्रभो आहार हुआ।
नृप श्रेयांस व सोम रहे जो, तब गृह विधि आहार हुआ॥ 161॥

★★★

हुआ अक्षय आहार जहाँ पर, अक्षय तृतीया नाम हुआ।
इस तिथि पर शुभ-भाव किये जब, भवि का मंगल काम हुआ॥
एक हजार वर्ष तप कीना, कैवलज्ञ सुख पाया था।
चौसठ ऋद्धि-धारी- जिन का, समवसरण रचवाया था॥ 162॥

★★★

इन्द्राज्ञा से समवसरण की, अद्भुत रचना जग-न्यारी।
समवसरण सभाएँ द्वादश, प्रभु-वाणी खिरती प्यारी॥
वृषभसेन जी बने थे गणधर, दिव्य ध्वनि समझाते थे।
जिसको सुनकर भविजन सारे, तृप्त सभी हो जाते थे॥ 163॥

शेर, गाय भी एक जगह जहँ, जल पीते यह अतिशय जान।
प्रभु का उत्तम समवसरण लख, चकित हुआ था पूर्ण जहान॥
लाखों वर्षों समवसरण से, जग-उद्धार हुआ मानो।
भरत, बाहुबलि, ब्राह्मी, सुन्दरी, हुए दीक्षित सब जानो॥ 164॥

★ ★ ★

आदिनाथ प्रभु अष्टापद से, मोक्ष-गये शिव धाम खुला।
बाहुबलि वे भरत भी ध्यानी- बने उन्हें फिर मोक्ष मिला॥
पदवी बिना हि अनन्तवीर्य वे, मोक्ष गये थे सर्व प्रथम।
पदवी धारी बाहुबली फिर,-मोक्ष गये यह सर्व कथन॥ 165॥

(ऋषभ-देव पञ्चकल्याणक तिथियाँ)

अषाढ़ कृष्णा दोज तिथि को, गर्भ में आये आदि प्रभो।
शुभ-तिथि चैत्र कृष्ण नवमी पर, जन्म लिया था आदि प्रभो॥
इसी तिथि पर दीक्षा भी ली, तप कल्याणक हुआ प्रभो।
फाल्गुन कृष्णा ग्यारस तिथि पर, बने केवली आदि प्रभो॥ 166॥

★ ★ ★

बारह योजन समवसरण था, वाणी अमृत लाभ हुआ।
वृषभसेन गणधर प्रभु द्वारा, जिन-वाणी का अर्थ हुआ।
भव्यों द्वारा धर्म-ग्रहण कर, सार्थ मोक्ष-पुरुषार्थ हुआ।
माघ कृष्ण शुभ चतुर्दशी को, आदि प्रभो निर्वाण हुआ॥ 167॥

(महावीर-जयन्ती महोत्सव)

चैत्र माह की त्रयोदशी को, वीर-प्रभो ने जन्म लिया।
स्वर्गिक देवों ने आकर के, प्रभु का जय-जयकार किया॥

नन्द्यावर्त भवन पावन था, जिसमें प्रभुवर जन्में थे।
त्रिशला माँ सिद्धार्थ पिता वे, बड़भागी हो, सुखमय थे॥ 168॥

★★★

मेरु-पर्वत पर इन्द्रों से, तीर्थंकर अभिषेक हुआ।
क्षीरोदधि का जल लाया था, नृत्य-गान शुभ नेक हुआ॥
कोटि वाद्य व जय-जय ध्वनि से, गगन सुगुंजित हुआ महान।
खुशियाँ छाईं मधुर-गान से, सुख वारिधि-मय हुआ जहान॥ 169॥

★★★

एक हजार निज नेत्रों द्वारा, देख, इन्द्र ने नृत्य किया।
ताण्डव नृत्य हि परम खुशी से,-हुआ जगत् को तृप्त किया॥
वीर-प्रभो की परम्परा से, जिनवाणी जो धार बही।
केवलज्ञानी, गणधरादि से,- पूजित निज का सार सही॥ 170॥

(श्रुत-पञ्चमी-पर्व-महोत्सव)

श्रुत-सु-केवली, से बहती वह, श्रुतधारा जिनने पायी।
थे धरसेन जु महा-सूरि वे, जिनसे धारा बच पायी॥
पुष्पदन्त व भूतबली को,- दिया आपने श्रुत का ज्ञान।
षट्खण्डागम रचे जिन्होंने, झुके देवगण दे सम्मान॥ 171॥

★★★

श्रुत-पञ्चमी-पर्व हि पावन, जग में खुशियां लाता है।
श्रुत, गुरु-पूजा गुणगानों से, सबके मन को भाता है॥
शास्त्र सजावट प्रवचनमाला, प्रभावना का अंग रहा।
पुण्य बढ़ाता सुख को लाता, होता गुरु सत् संग रहा॥ 172॥

(शास्त्राध्ययन-महिमा)

रचे हजारों ग्रन्थ हमारे, आचार्यों ने शुभकारी।
पढ़ें, बढ़ेगा अनुभव उत्तम, मोक्ष-मार्ग-मय सुखकारी॥
जन्मों-जन्मों तक भी उनका, कर्ज चुका क्या पायेंगे।
तपस् साधना के अमृत को, पियें सदा गुण गायेंगे॥ 173॥

★★★

ग्रन्थों का वह सार ज्ञान-मय, चरित जगत् में शोभित हो।
ज्ञान आचरण बिना, गंध बिन,-पुष्प-समा क्या शोभित हो॥
थोड़ा-सा भी ज्ञान अगर हो, विस्मृत भी वह हो जावे।
समदर्शी वह अगले भव में, केवलज्ञानी-पन पावे॥ 174॥

★★★

रत्न-पिटारा मोक्ष-शास्त्र है, द्रव्य सु-संग्रह साथ रहा।
इष्ट रहे उपदेश आत्म का, समाधि का वह तंत्र कहा॥
सर्व अर्थ की सिद्धि जिसमें, ज्ञानार्णव कहलाता है।
आत्म-अनुप्रेक्षा-सु भावन से, नियमसार भी भाता है॥ 175॥

★★★

सार हि मूलाचार मिले तो, प्रवचनसार वहाँ आता।
आत्मा के अनुशासन द्वारा, तत्त्वसार फिर मिल जाता॥
जीव, कर्म का काण्ड जहाँ भवि, सम्यक्ता से पाते हैं।
न्याय-दीप से आगम के वे, ज्ञाता भी बन जाते हैं॥ 176॥

★★★

जहाँ प्रश्न के उत्तर मिलते, रत्न मालिका का हि योग।
जैनागम के संस्कार से, पढ़ते भवि आगम-अनुयोग॥
तीर्थंकर के समवसरण में, पञ्च अस्तिकायों को सुन।
दर्शन आदि पाहुड़ से भी, आतम में चलता गुन-गुन॥ 177॥

★★★

बचपन का वह संस्कार जो, धर्म भावना लाता है।
पर्यूषण-पीयूष पिलाकर, सम्यक् ध्यान जगाता है॥
हृदय जैन शासन का उत्तम, गुरु-गुण महिमा गाता है।
हो परमार्थ हि जहाँ साधना, आत्मोद्धार कराता है॥ 178॥

★★★

हो सन्मार्ग-प्रभावना जहँ, तीर्थोदय निश्चित होगा।
जिनवर स्तुति समवसरण में, गा-गाकर भवि नत होगा॥
आर्जव-मय शुभ कविताओं से, हृदयशांति मिल जावेगी।
सदाचार की सदा सूक्तियाँ, निश्चित ही मन भायेंगी॥ 179॥

★★★

समयसार के समयोदय से, आध्यात्मिक जीवन होगा।
ज्ञान, ध्यान, तप-मय वह जीवन, अन्तादि श्रीमत् होगा॥
कथनी-करनी एक रहेगी, षड् आवश्यक नित होंगे।
पञ्च-महाव्रत पञ्च-समितियाँ, आदि मूलगुण नित होंगे॥ 180॥

(साधु-साधना एवं सावधानी)

बारह तपादि उत्तर-गुण सह,- तीन गुप्तियाँ साधु रखें।
दूर, गूढ़, प्रासुक, अविरोधी, शौच हेतु थल ध्यान रखें॥

कूप, नदी, वर्षा के जल से, क्रिया पालने में मन हो।
सांसारिक उन आरम्भों से, दूर रहे शुभ जीवन हो॥ 181॥

(भव्य-सम्यक्त्वी-साधु-सेवा-फल)

तन्त्र-मंत्र मिथ्यात्व पास ना, परिग्रह न, मन पावन हो।
पिच्छि, कमण्डलु, शास्त्र उपकरण, भवि दें धर्म-सु-साधन हों॥
महा-पुण्य से भरे भक्त वे,-दुःखी न रहते कभी यहाँ।
तीर्थ-यात्रा साधु जनों की,-करवाते अति-पुण्य महा॥ 182॥

(धर्म-परिरक्षण-भावना)

शास्त्र-प्रकाशन, श्रुत का रक्षण, करते, होते भव से पार।
धर्म-संस्कृति सदा हि चलती, अनुभव मिलता सुखमय सार॥
आयतनों की रक्षा से ही, रत्नत्रय की वृद्धि हो।
प्रतिमा निर्मित, संरक्षण से, अति सुख की समृद्धि हो॥ 183॥

(धर्म-पालन का फल)

धर्मात्मा को चार दान दें, धर्म बढ़ाते जो उत्तम।
अपने शुद्ध आचरण से वे, लक्ष्य पायें वे परमोत्तम॥
धर्म-प्रभावना करते बढ़ते, मोक्ष-मार्ग में भविजन नेक।
ध्यान करें, सल्लेखन भी वे,- धारें, पाते सौख्य अनेक॥ 184॥

★ ★ ★

णमोकार व त्याग नियम सह, सल्लेखन जो करता है।
लौकांतिक बन इक ही भव में, मोक्ष सुपद को गहता है॥
अथवा दो से तीन भवों में, मोक्ष महा-सुख पाता है।
अनन्त-गुणों का स्वामी बनकर, लौट कभी न आता है॥ 185॥

(भक्ति-भावना)

स्तोत्रों में रहा स्वयंभू, चौबीसी के गुण गायें।
भक्तों को जो अमर करे उस, भक्तामर से सुख पायें॥
सदा एक ही भाव धर्म-मय, एकीभाव स्तोत्र रहा।
विष को हरा दिया था जिसने, विषापहार स्तोत्र कहा॥ 186॥

★★★

प्रातः उठकर वीतराग को, जिसमें ध्याया जाता है।
तीर्थंकर सब, नवदेवों के, गुण को गाया जाता है॥
सुप्रभात स्तोत्र प्रथम वह, सब जग का कल्याण करे।
उठते ही प्रातः जग पूरा, जिसका नित ही ध्यान करे॥ 187॥

★★★

दर्शन महिमा वीतराग की, जिसमें उत्तम गायी है।
सु-नाम वाला वह अद्याष्टक, स्तोत्र सदा सुख दायी है॥
सिद्धादिक की दशों भक्तियाँ,-भरी गुणों-मय धन्य रहीं।
तीन लोक का सार बताती,-वीतराग-मय अन्य नहीं॥ 188॥

(स्तोत्र-भक्ति के अतिशय)

ऋषभ, अजित आदि चौबीसों, तीर्थ-जिनों का गान किया।
रचा स्वयंभू गुण स्तोत्र जो, स्याद्वाद का ज्ञान दिया॥
वीतराग गुण जहाँ समाये, शिव-पथ का भी पता दिया।
समन्तभद्र भद्र कहलाये, अतिशय उत्तम बता दिया॥ 189॥

★★★

चन्द्र-प्रभो की स्तुति में जब, 'वंदे' पद का गान किया।
सराग शिव में वीतराग शिव,-प्रकटे, नृप मद हान किया॥
शिव कोटि नृप चन्द्र-प्रभो नम, जैन बना शुभ भाग्य खुले।
राज-पाट को छोड़ा स्वामि-समन्तभद्र-गुरुराज मिले॥ 190॥

★★★

शान्ति-भक्ति में जगत् शान्ति है, रोग-शोक नश जाते हैं।
धर्मी मानव वीतराग-जिन, शांतिनाथ गुण गाते हैं॥
पूज्य-पाद आचार्य जिन्होंने, कहा हि दृष्टि प्रसन्न करो।
नयनों में ज्योति भर आयी, अतिशय प्रकटा धन्य अहो॥ 191॥

★★★

भक्तों को जो अमर बनाये, भक्तामर कहलाता है।
जो भी पढ़ता भक्ति-भाव से, जीवन सुखी बनाता है॥
मानतुंग आचार्य जहाँ थे, वहाँ कोठियाँ अड़तालीस।
ताले, जंजीरे भी टूटीं, पद्य रचे जब अड़तालीस॥ 192॥

★★★

वादिराज वे सूरि बड़े थे, एकीभाव रचा जिनने।
ऐसे महा स्तोत्र पाठ से, नष्ट हि कुष्ट किया जिनने॥
निरोग-काया स्वर्ण-मयी सी-पायी, जिनने धन्य हुए।
जन-मन में बहु-भक्ति उमड़ी, गुण-गाने संलग्न हुए॥ 193॥

★★★

विषापहार स्तोत्र महा है, जहाँ प्रभो का शुभ गुणगान।
किया धनञ्जय कविराज ने, वीतराग का जिसमें ध्यान॥

फैला विष था तन में सुत के, जहाँ विषैले अहि का पूर्ण।
स्तुति गायी, गंधोदक दे, हुआ पलायन विष सम्पूर्ण॥ 194॥

(भक्ति का फल)

भक्त बने जो भगवन् बनता, भक्ति बिना न पूज्य बने।
पूजा पूज्य बनाती जग में, पूजा से प्रभु पूज्य बनें॥
आदर, विनय व भक्ति स्तुति, उपासना परिचर्या हो।
अतिशय मय वह पुण्य भरे वा, कर्म क्षयी शुभ क्रिया हो॥ 195॥

★★★

सदा भक्तियाँ तीर्थंकर के,-प्रकृति-बंध में कारण हैं।
जग कल्याणी बने हि जीवन, पावन मोक्ष सु साधन है॥
मण्डल-विधान ये महापुण्य से-भरे जिनागम कहता है।
इन्द्र नरेन्द्र का वैभव दे वा-जिनवर सौख्य अमरता है॥ 196॥

(तीर्थ-भावना)

सदा तीर्थ का संरक्षण हो, जीर्णोद्धार करो मन से।
धन,मन से सहयोग करो नित, नव निर्माण करो तन से॥
कम-से-कम इक वर्ष में जाओ, तीर्थों का वंदन करने।
पूजन जिनाभिषेक रचाओ, संस्कृति की रक्षा करने॥ 197॥

(पञ्च-महातीर्थ वंदन)

पञ्च तीर्थ हैं तीर्थंकर के, सुप्रसिद्ध माने जाते।
श्री सम्मेद-शिखरजी उत्तम, चम्पा, पावापुर भाते॥
अष्टापद गिरनार पूज्य हैं,-चरण जिनालय जहँ निर्माण।
तीर्थंकर-चौबीस-जिनों ने, पाया था जहँ पद निर्वाण॥ 198॥

(सिद्धक्षेत्र और अतिशय-क्षेत्र वंदन)

सर्व-सिद्ध व अतिशय क्षेत्रों, की भी रक्षा हो मन्तव्य।
बाहुबली या महावीर जी, कुण्डलपुर रक्षा कर्त्तव्य॥
जम्बूद्वीप या राजगृही हो, बावनगज, तारंग महान।
मुक्तागिरि, कुंथलगिरि उत्तम, द्रौण व नैनागिरि प्रणाम॥ 199॥

★★★

पावागढ़, शत्रुञ्जय प्यारा, अहार, पपौरा, पवा सुजान।
सोनागिरि फिर गढ़ देवों का, सिरोन, शिरपुर नमन प्रधान॥
मांगीतुंगी, गजपंथा अरु, चांदखेड़ि, गोपाचल मान।
वंदन पूजन निशि-दिन करते, सुर-जन नर हि देते दान॥ 200॥

★★★

कुण्डलगिरि श्री आदिनाथ का, क्षेत्र महान कहा जाता।
थूबोन, चँदेरी बड़ा-गाँव का, दर्शन अतिशय सुख लाता॥
मानतुङ्ग, प्रभासगिरि भी, ईशुरअरु बीनावारा।
चूलगिरि, अजमेर अमर है, खजुराहो जो है प्यारा॥ 201॥

★★★

सिद्धोदय व कूट सिद्धवर, क्षेत्र भोजपुर, पटना जान।
सारे जग में प्रसिद्ध जैन वे, बने तीर्थ हैं गुण की खान॥
गोम्मटगिरि अरु पचराई व, गोलाकोट, नवागढ़ सोह।
अपनी अनुपम वीतराग मय, छवि से रहे मनस् को मोह॥ 202॥

★★★

उदय-खण्डगिरि, कोटि-शिला अरु, पोदनपुर से मोक्ष गये।
जहँ कल्याणक सिद्ध हुए जिन, अतिशय थल भी पूज्य भये॥
तीर्थ शोभते साधु जनों वा, भक्तों की भक्ति से जान।
जहँ 'आर्जव' मय बिखरे रहते, गुण प्रशस्त वे जिन्हें प्रणाम॥ 203॥

★★★

रहा अयोध्या, बद्री द्वय भी, रैवासा अरु सांगानेर।
शौरी-वटेश्वर पदमपुरा व, देय तिजारा पुण्य न देर॥
कला युक्त लाडनूँ जिनालय, बिजौलिया के पारसनाथ।
ताल जबलपुर आदिनाथ वे, नमें पनागर शांतिनाथ॥ 204॥

★★★

बहलना क्षेत्र या वरनावा हो, होय दयोदय, ज्ञानोदय।
रानीला महरौलि करगुवां, आबू महुआ पार्श्वोदय॥
उदयगिरि, मदनपुर हि हो, पावा, बँधा व अभिनन्दन।
पैठन, कचनेर, अहिछत्र हो, काशी, नौगज को वंदन॥ 205॥

★★★

क्षेत्र-भातकुली, दही गाँव व, कुण्डल, अरहन्ता जानो।
पटनागंज व कहो पटेरिया, पजनारी आरा मानो॥
बानपुर व काकँड़, हाँसी, क्षेत्र बनेड़िया पूज्य महान।
सजोद, सालेड़ सरवाड़ व, प्रताप व चँवलेश्वर मान॥ 206॥

★★★

केशवराय झालरा - पाटन, जहाजपुर भी जहाँ रहे।
नीलगिरि वा तिरुनरूम्-कुण्डू, तपोनिलय भी वहाँ कहें॥

क्षेत्र बहोरीबंद है प्यारा, अरु खन्दारगिरि भी मान।
अमर रहे अमरकण्टक वह, और समसगढ़ पूज्य सुजान॥ 207॥

★★★

क्षेत्र बहोरा कुलचारम भी, मदुरै, टौड़ि फतेपुरी।
देखो टोड़ा रायसेन भी, बिढ़ोर, चित्तामूर सभी।
श्रवणबेलगोला में दिखते, चन्द्रगिरि व विन्ध्यगिरि।
मुनियों के तप त्याग बताते, पुष्प देय मंदारगिरि॥ 208॥

★★★

इन्द्रपुरी, मक्सी, केशरिया, तथा वमोतर, नोगामा।
देवारी व रहा सांखना, छिदवार वागोल, बहसूमा॥
कलिंजरा पड़तापुर खण्डार, खेलवाड़ा सु-खूड़ादरी।
मरसल गंज, महेन्द्रवास वा, लूड़वा अतिशयकार मही॥ 209॥

★★★

रत्नपुरी श्रावस्ती, मंगल, सिंहपुरी हो भाग्योदय।
चन्द्रपुरी कम्पिलाक्षेत्र जो, प्रयाग गुणावा वीरोदय॥
भीलोड़ा, कुंभोज, कैथुली, जहाँ तीर्थ गुण पुष्प खिलें।
वीतराग नम, जीव सु-रक्षण, '**आर्जवता**' का तीर्थ मिले॥ 210॥

★★★

प्रशस्ति

अशोकनगर में भव्य यह, हुआ सु-वर्षायोग।
बढ़ी प्रभावन धर्म की, महापुण्य संयोग॥ 211॥

विद्यासागराचार्य की, कृपा रही है पूर्ण।
काव्य-कृति बढ़ती रही, अतिशय मय सम्पूर्ण॥ 212 ॥

★★★

वीर-मोक्ष पच्चीस सौ, उनन्चास यह जान।
शुभ संवत् पर पूर्ण यह, रचना हुई महान॥ 213 ॥

★★★

यह सन्मार्ग प्रभावना,-काव्य बना है नेक।
पढ़ें, बढ़ें सन्मार्ग में, '**आर्जव**' रहे विवेक॥ 214 ॥

★★★

कुंडलपुर बड़ेबाबा के जिनालय का पावन दृश्य

तीर्थंकर-जिन-स्तुति शतक

(चौबीस तीर्थंकरों का गुणगान)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज

विषय-वस्तु

तीर्थंकर-जिन-स्तुति शतक

- श्री आदिनाथ जिन-स्तवन
- श्री अजितनाथ जिन-स्तवन
- श्री संभवनाथ जिन-स्तवन
- श्री अभिनंदननाथ जिन-स्तवन
- श्री सुमतिनाथ जिन-स्तवन
- श्री पद्मप्रभु जिन-स्तवन
- श्री सुपार्श्वनाथ जिन-स्तवन
- श्री चन्द्रप्रभु जिन-स्तवन
- श्री पुष्पदंत जिन-स्तवन
- श्री शीतलनाथ जिन-स्तवन
- श्री श्रेयांशनाथ जिन-स्तवन
- श्री वासुपूज्य जिन-स्तवन
- श्री विमलनाथ जिन-स्तवन
- श्री अनंतनाथ जिन-स्तवन
- श्री धर्मनाथ जिन-स्तवन
- श्री शांतिनाथ जिन-स्तवन
- श्री कुंथुनाथ जिन-स्तवन
- श्री अरहनाथ जिन-स्तवन
- श्री मल्लिनाथ जिन-स्तवन
- श्री मुनिसुव्रतनाथ जिन-स्तवन
- श्री नमिनाथ जिन-स्तवन
- श्री नेमिनाथ जिन-स्तवन
- श्री पार्श्वनाथ जिन-स्तवन
- श्री वीर जिन-स्तवन
- प्रशस्ति

श्री आदिनाथ जिन-स्तवन

आदिनाथ जिनवर नमूं, कर्म सभी धुल जायँ ।
तव गुण-गण का लाभ हो, समता- दल खिल जायँ॥ 1॥

★★★

दया-धर्म उपदेश यह, जग को दिया हितार्थ ।
धर्म, मोक्ष पुरुषार्थ से, जीवन होता सार्थ ॥ 2॥

★★★

रवि-सम प्रकटे आप हो, मिथ्यातम का नाश।
किया लोक में आपने, दर्शन दिया प्रकाश॥ 3॥

★★★

षट्कर्मों से लोक में, दिया नीति-मय ज्ञान।
आदि-प्रभु से धर्म को, मिला बड़ा सम्मान॥ 4॥

श्री अजितनाथ जिन-स्तवन

अजितनाथ को माथ यह, झुका रहा दिन-रात।
भवोदधि के बीच से, निकाल पकड़ो हाथ ॥ 5॥

★★★

विशाल तव प्रभु तीर्थ का, प्रभाव फैला लोक ।
जीते तव दुख तीर्थ ने, आधि-व्याधि सब शोक॥ 6॥

★★★

अजेय शक्ति-मय आप हो, भव दुःख जेता नाथ।
शत्रु मित्र में साम्य हो, मोक्ष-श्री के साथ॥ 7॥

★★★

परम सुखद शुभ नाम है, अजितनाथ भगवान॥
नाम लेय सब काम हों, जगे आत्म का ज्ञान॥ 8॥

श्री संभवनाथ जिन-स्तवन

संभव जिनवर आपसे, नहीं असंभव कार्य ।
शेष रहे न देश में, अनार्य बनते आर्य॥ 9॥

★★★

समता प्रभुता पायँ सब, तव चरणों दें जाप ।
फूलें फलते योग से, शिव वरते हैं आप॥ 10॥

★★★

आकस्मिक तुम वैद्य हो, भव का मिले इलाज।
दर्शन, पूजन औषधि, मोक्ष-सौख्य के काज॥ 11॥

★★★

कर्म कटें, संसार से, मोक्ष मिले शुभ-धाम।
संभव-जिन शुभ-नाम से, ध्यान मिले शिवराम॥ 12॥

श्री अभिनंदननाथ जिन-स्तवन

अभिनन्दन गुण का करें, गुण का कोश विशाल ।
दर्शन, ज्ञान, चरित्र की, सम्पद् हो खुशहाल॥ 13॥

★★★

सदा- नन्द आतम रहे, नन्दन बन स्वाधीन ।
अभिनन्दन के शुभ-चरण, पकड़ूँ हो लवलीन॥ 14॥

★★★

करुणा-धर निर्ग्रन्थ हो, लोक-हितैषी पूर्ण।
धर्म-क्रिया-विधि भव्य-जन,-हेतु कही सम्पूर्ण॥ 15॥

★★★

एक-स्वात्म-स्वभाव में, द्रव्य अनेकी ज्ञान।
सत्त्व-मात्र का हित करे, प्रभु का केवलज्ञान॥ 16॥

श्री सुमतिनाथ जिन-स्तवन

सुमति होय यह मम-मति, तव-सम सुंदर पूर्ण ।
कुमति मिटा दो; सन्मति, दे दो प्रभु सम्पूर्ण ॥ 17॥

★★★

समवसरण-वैभव जहाँ, शोभें आप जिनेन्द्र।
मंगल प्रातिहार्य-सह, मुनिगण पूजें इंद्र ॥ 18॥

★★★

आत्म-समाधि लीन हो, पूर्ण बने स्वाधीन।
शुक्ल-ध्यान से शीघ्र ही, कर्म हुए सब क्षीण॥ 19॥

★★★

विधि अञ्जन को धो दिया, सद्गुण-गण के धाम।
अनन्त-शक्ति प्रकटी जहाँ, पूर्ण हुए सब काम॥ 20॥

श्री पद्मप्रभु जिन-स्तवन

पद्मप्रभु हो लाल तुम, पाद-गुलाबी रूप।
भविक चकित लख रूप तव, होते प्रभु अनुरूप॥ 21॥

★★★

रंगित नभ तव रंग में, इंद्र-वृंद समुदाय ।
आप-गुणों की गंध में, महक लोक सब जाय॥ 22॥

★★★

पद्मबन्धु हो पद्मसम, शरीर रश्मि नित सोह।
चारुमूर्ति जग में करे, नर-सुर का मन मोह॥ 23॥

★★★

पादाम्बुज नित शोभते, पद्ममणी-सम रूप।
मोह-दर्प जग का करें, दूर; आप जिनरूप॥ 24॥

श्री सुपार्श्वनाथ जिन-स्तवन

सुपार्श्व जिनके पार्श्व में, अनंत-गुण अभिराम ।
आप-चरण में वास हो, मिले निजी आराम॥ 25॥

★★★

शुचि-मय तन मन तब बने, जब आवें तुम पास ।
चेतन पावन भी बने, तव-गुण के जब दास॥ 26॥

★★★

स्वस्थ्य न रहता लोक यह, मानव स्वार्थी रोज।
भङ्गुर-भोग हि भोगता, तन में सुख कर खोज॥ 27॥

★★★

अशुभ-देह में व्यर्थ ही, नेह करे जग जान।
सुपार्श्व जिन-नेता कहें, तन-सुख अहित हि मान॥ 28॥

श्री चन्द्रप्रभु जिन-स्तवन

चन्द्रप्रभु लख चन्द्रमा, होता लज्जित रोज ।
आभा अनुपम आपकी, सहस्त्र सूर्य-सम ओज॥ 29॥

★★★

समता पाते आपसे, भविक लोक के नाथ ।
मन-पवित्र कर भव्य को, वरो मोक्ष नत माथ॥ 30॥

★★★

अवलोकन शुभ गुण करे, लोक भक्ति-कर नाथ।
अद्वितीय गुण-चन्द्र हो, भविजन झुकता माथ॥ 31॥

★★★

कर्म-गजों का नाश कर, ध्यान-केसरी नाथ।
रहे पुनीत-पवित्रता, चन्द्रप्रभो नित साथ॥ 32॥

श्री पुष्पदंत जिन-स्तवन

पुष्पदंत ने क्षय किया, विधि को सुविधि पाय, ।
देह-राग को छोड़कर, गुणनिधि जग में भाय॥ 33॥

★★★

आप-चरण में बैठकर, साता पाते संत ।
हमें दीजिये शीघ्र ही, शुभ-गुण सभी अनन्त॥ 34॥

★★★

तत्त्व प्रणेता आप से,-विधि, निषेध का ज्ञान।
प्रमाण, नय से हुई प्रभो, अनेकान्त पहचान॥ 35॥

★★★

स्यात्–कथञ्चित् योग से, शुद्धाशुद्ध निजात्म।
बाह्याभ्यंतर हेतु से, शिव पाती शुद्धात्म॥ 36॥

श्री शीतलनाथ जिन-स्तवन

शीतल–प्रभु की छाँव में, कल्पतरु का योग ।
विषय–दाह सब शान्त हो, चेतन का हो भोग॥ 37॥

★★★

मोक्षमार्ग से मोक्षसुख, फलता–तव पद भाय।
अतः रात–दिन शरण में, बैठूँ समता आय॥ 38॥

★★★

गंगा, चंदन, चन्द्रमा, तन में शीतल जोय।
प्रभु–वचन हैं औषधी, आत्म सौख्यकर होय॥ 39॥

★★★

हरता अमृत व्याधि को, अमर जीव कहलाय।
वाणी प्रभु की गुण करे, निःश्रेयस सुखदाय॥ 40॥

श्री श्रेयांसनाथ जिन-स्तवन

श्रेय–मार्ग में आपसे, होता जग का क्षेम ।
जीव–मात्र पर हो दया, जहाँ जगत् पर प्रेम॥ 41॥

★★★

श्रेष्ठ बनें उपकार से, सर्व मिटे संताप ।
प्रभु श्रेयांस के नाम से, भग जाता अभिशाप॥ 42॥

★★★

जिन-शासन में शुभ दिया, मुख्य-गौण-सम ज्ञान।
सापेक्षी निरपेक्ष है, सम्यक्, मिथ्या मान॥ 43॥

★★★

मोक्ष-साध्य, साधन कहें, रत्नत्रय जिन-देव।
कर्म-रिपु को नाशकर, शिव में रहे सदैव॥ 44॥

श्री वासुपूज्य जिन-स्तवन

वासुपूज्य जग-पूज्य हो, तव-सम नहीं सुपूज्य ।
भविजन तुमको पूजते, इक दिन बनते पूज्य॥ 45॥

★★★

पूजा ना संसार में, कभी रुलाती जान ।
झुकता फल से हो लदा, वृक्ष पाय सम्मान॥ 46॥

★★★

हे! प्रभुवर लघुदीप-सम, योग्य नहीं मम-गान।
सुर-पूजित हो लोक में, गणधर भी दें मान॥ 47॥

★★★

पूजा में कुछ दोष हो, विष कणिका-सम रूप।
सागर-सम बहु पुण्य हो, पूजा विधि अनुरूप॥ 48॥

श्री विमलनाथ जिन-स्तवन

विमल अमल जिन तुम बने, पाप-शत्रु को छोड़ ।
परिषह-सह उपसर्ग भी, सहे विषय मुख-मोड़॥ 49॥

★★★

बाल-भक्त को बोध दो, सुविजित बनूँ कषाय ।
विषय-वासना में कभी, परिणति वह न जाय॥ 50॥

★★★

विमल-जिनेश्वर शुद्ध निज, चेतन सुगुण स्वरूप।
ज्ञान, दर्श मय है कहा, शिव, भव के अनुरूप॥ 51॥

★★★

पूर्ण-विश्व के द्रव्य सब, गुण, पर्यायें साथ।
युगपत् इक क्षण में लखें, दर्पणवत् जिननाथ॥ 52॥

श्री अनंतनाथ जिन-स्तवन

अनंत-शक्ति के धाम जिन, गुण की मिले पराग ।
नमूँ पुण्य हो कर्म-क्षय, शुचि आतम में जाग॥ 53॥

★★★

आतम-बल उन्नत बने, धर्म-कर्म में नेक ।
ज्ञानभानु का हो उदय, चिर चैतन्य-विवेक॥ 54॥

★★★

निज-समाधि में लीन हो, तृष्णा मद को जीत।
कषाय, राग व द्वेष को,-हरा मोक्ष के मीत॥ 55॥

★★★

तप-परिश्रम कर राग का,-नाश किया विधि-शोध।
ध्यान-शुक्ल के हेतु से, किया हि योग-निरोध॥ 56॥

श्री धर्मनाथ जिन-स्तवन

धर्म-शिरोमणि आप हो, धर्म-तीर्थ के नाथ ।
धर्म तारता कष्ट से, सभी जगह दे साथ॥ 57॥

★★★

भवसुख देता मात्र ना, शिवसुख देता पूर्ण ।
तीर्थ, राजपद सम्पदा, अतिशय-गुण सम्पूर्ण॥ 58॥

★★★

लक्षण उत्तम आप में, सहस्र हि अधिक विशेष।
रहे प्रणेता धर्म के, आगम-ज्ञान अशेष॥ 59॥

★★★

मुनि, श्रावक सद्-धर्म का, भव्यों को उपदेश।
मिला, अनन्त उपकार-मय, सार्थक जिन-संदेश॥ 60॥

श्री शांतिनाथ जिन स्तवन

परम-शान्ति-दाता प्रभु, शांतिनाथ भगवान ।
चक्री-पद तव त्याग से, बढ़ी धर्म की शान॥ 61॥

★★★

करूँ महा पुरुषार्थ तव,-सम, बन जाऊँ नाथ ।
मिले मोक्ष तब तक प्रभो, नहीं छोड़ना साथ॥ 62॥

★★★

शांत-मूर्ति हो विश्व में, किया शांति-साम्राज्य।
दया-मूर्ति हर जीव को, शरण बना तव-राज्य॥ 63॥

★★★

भव-क्लेश सब शान्त हों, रक्षा पाये लोक।
राज-प्रजा व साधु का, कष्ट मिटे भय शोक॥ 64॥

श्री कुंथुनाथ जिन-स्तवन

सदया कुन्थु महान हो, नहीं जगत् से स्वार्थ ।
आत्म-शुद्ध-कर शील-धर, पाया है परमार्थ॥ 65॥

★★★

तत्त्व, द्रव्य उपदेश दे, सार्थक किया जहान ।
योग-ध्यान उपयोग से, बनता लोक महान॥ 67॥

★★★

धर्म-चक्र के स्वामि हो, रत्नत्रय की खान।
राज्य-छोड़ वैभव तजा, हो निर्ग्रन्थ महान॥ 68॥

★★★

आध्यात्मिक-विद्या जगी, तपो-विभूति आर्य।
किया महा पुरुषार्थ जिन, सुधी स्वहित का कार्य॥ 69॥

श्री अरहनाथ जिन-स्तवन

अरहनाथ रत आत्म में, भव-सुख तन को भूल ।
नश्वर-जग के भोग सब, बतलाये प्रतिकूल॥ 70॥

★★★

शाश्वत -सुख ही ध्येय जब,-बने मिले जग-चूल ।
वहीं परम-आनंद वह, दे दो प्रभु भव-कूल॥ 71॥

★★★

तव-गुण-गण की शुभ-कथा, सीमातीत महान।
शक्तिहीन हूँ, अल्प ही, कह सकता भगवान॥ 72॥

★★★

तव-कीर्ति जग में महा-विस्मय कारी धन्य।
तव-सम सुन्दर लोक में, नहीं मूर्ति है अन्य॥ 73॥

श्री मल्लिनाथ जिन-स्तवन

मल्लिनाथ विधि-मल्ल को, हरा दिया बन शूर ।
आत्म-ब्रह्म में लीन हो, शील-वान बन पूर॥ 74॥

★★★

मंगल-मूरत सौम्य हो, धर्म बनाया मीत ।
पुलकित हो तव-पाद में, निशि दिन गाऊँ गीत॥ 75॥

★★★

स्वर्णिम प्रभुवर रूप है, ख्याति जय-जयकार।
परम-तपस्वी हो ऋषि, तीर्थ-तत्त्व दे सार॥ 76॥

★★★

सकल पदार्थों के रहे, ज्ञाता सब परमार्थ।
ज्ञान दिया भवि-लोक को, सफल हुआ पुरुषार्थ॥ 77॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिन-स्तवन

मुनियों के सुन्दर जहाँ, व्रत के धारक श्रेष्ठ ।
शुक्लध्यान शुभ लीन तुम, उत्तम-तप में ज्येष्ठ॥ 78॥

★★★

संयम, व्रत से कर्म का, करूँ नाश यह चाह ।
भ्रमण भवों का छोड़ हो, शिवसुख में अवगाह॥ 79॥

★★★

मन-निग्रह कर साधु बन, शुचि-पवित्र उपयोग।
शुक्लध्यान कर कर्म-क्षय, हेतु सु बने अयोग॥ 80॥

★★★

सौम्य पूर्ण बन सोम-सम, शीतल शान्त स्वरूप।
अशल्य, मल्ल-सम कर्म को, जीता, पा निज रूप॥ 81॥

श्री नमिनाथ जिन-स्तवन

नमि-जिन ने मिथ्यात्व तम, नशा दिया अविलंब ।
भविक-जनों को मोक्ष में, होगा कहाँ विलम्ब॥ 82॥

★★★

नम नम नमि-जिन आपके, पद-पंकज विधि धोय ।
तव-ध्यानी बन एक दिन, तव-सदृश भवि होय॥ 83॥

★★★

स्तुति-सुयोग्य हे! प्रभो, आगम का विज्ञान।
भरा आत्म में हो कुशल, सकल लोक-विद्वान॥ 84॥

★★★

विदित जिनेश्वर विश्व के, तत्त्वों का उपदेश।
भुवनत्रय के जीव पा, सुखी बने, हर क्लेश॥ 85॥

श्री नेमिनाथ जिन-स्तवन

नभ में नीले शोभते, फीका नभ का नील ।
लीन नेमि-जिन ध्यान में, डूबे गहरी-झील॥ 85॥

★★★

सलिल शीत-हर ताप को, शीतल भरे सुगंध ।
अधिक शीत, पंकज-समा, तव-गुण-गण-मकरंद॥ 86॥

★★★

परम योग से पा विपुल, आत्म-ज्ञान भण्डार।
केवलज्ञानी तीर्थ हैं, शील जलधि को धार॥ 87॥

★★★

इन्द्र-मौलिमणि-रत्न की, किरणें पद-अभिषेक।
करती, पद को चूमतीं, भातीं जग को नेक॥ 88॥

श्री पार्श्वनाथ जिन-स्तवन

पार्श्व बिठा लो पास जिन, ना हो भक्त उदास ।
पारसमणि हो, लोह को, कंचन करना खास॥ 89॥

★★★

विषय-वासना जंग-सम, होय दोष का नाश।
शिवपद, केवलज्योति का, शाश्वत भरो प्रकाश॥ 90॥

★★★

महामना उपसर्ग को, जीता स्वयोग-धार।
सेवा - कर नागेन्द्र ने, लिया पुण्य - उपहार॥ 91॥

★★★

बन अर्हन्त त्रिलोक से, पूज्य बने भगवान।
जय-जिनेन्द्र प्रभु-पार्श्व का, अतिशय हुआ महान॥ 92॥

श्री वीर जिन-स्तवन

वीर-प्रभु तुम क्षीर-सम, धवल-गुणों के धाम ।
आप-ध्यान से आत्म में, भवि पाते आराम॥ 93॥

★★★

धर्म-अहिंसा नाद से, हिंसा का प्राणांत ।
अनेकांत के ज्ञान से, भगा तिमिर एकांत॥ 94॥

★★★

वर्द्धमान - महावीर का, शासन हो जयवन्त।
जग-पूजित वह स्याद्-पद, -लाञ्छित सदा अनन्त॥ 95॥

★★★

नर, सुर, असुरादिक सदा, गाते गुण-गण गीत।
भासित श्रीमत् वीर का, शासन हो जग - मीत॥ 96॥

-प्रशस्ति-

चौबीसी जिनवर नमूं, आदिनाथ से वीर ।
'आर्जव' बन तव-ध्यान से, पाऊँ भव का तीर।। 97।।

★★★

कुन्द-पुष्प-सम स्वर्णमय, काया, जिनका रूप।
परम्परा से वीर का, -शासन-निर्मल रूप॥ 98॥

★★★

रहे स्वयंभू तीर्थ-जिन, चौबीसों भगवान।
'तीर्थंकर जिन-स्तुति, लिखी भक्ति-मय मान॥ 99॥

★★★

समन्तभद्राचार्य के, शब्द सुगुण-भण्डार।
चिन्तन करने में हुए, सफल पूर्ण आधार॥ 100॥

★★★

संवत् पच्चीस सौ रहा, इंक्यावन शुभ-रूप।
बड़ा सु मंदिर पार्श्व जिन, -काव्य बना गुण-रूप॥ 101॥

★★★

रही धर्म-नगरी महा, नाम पिड़ावा जान।
चाँदी-रथ की यादगी, यात्रा शुभ-मय मान॥ 102॥

★★★

जैन सर्व मुनि-भक्त का, रजत-दान सहयोग।
रथ निर्मित शुभ-भाव से, मिला पुण्य का योग॥ 103॥

★★★

वर्षायोग-प्रभावना, रही पिड़ावा शान।
अपूर्व बना इतिहास यह, सदा रहे पहचान॥ 104॥

★★★

नित्य पढ़ेंगे काव्य यह, पुण्य-भरेगा ओज।
'**आर्जवसागर सूरि**' बन, ध्यान-सफल हो रोज॥ 105॥

★★★

सम्यक्-ध्यान शतक

(ध्यान-साधना का
सुन्दर वर्णन)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

सम्यक् ध्यान शतक

- मंगलाचरण
- भूमिका
- संसार का लक्षण
- मोक्ष का स्वरूप
- भव्य का लक्षण
- धर्माधार दया
- लक्ष्य और सोपान
- आत्महित कैसे?
- ध्यान-साधना हेतु चिंतवन
- ध्यान की अवस्थायें
- ध्यान के योग्य सामग्री
- ध्यान हेतु द्रव्य
- संहनन
- आसन
- आहार
- बाधक-तत्त्व
- साधक को लाभ
- ध्यान की सुयोग्य विधि व प्रक्रिया
- ध्येय व साधन द्रव्य
- ध्यान हेतु क्षेत्र
- ध्यान हेतु काल
- ध्यान हेतु भाव
- समता
- संयम
- सद्भावनाओं के प्रकार
- आर्त्तध्यान का स्वरूप
- इष्टवियोग
- अनिष्टसंयोग
- पीड़ा-चिन्तवन
- निदान
- आर्त्तध्यान के गुणस्थान
- रौद्र-ध्यान का स्वरूप
- हिंसानंद
- मृषानंद
- चौर्यानन्द
- परिग्रहानन्द
- रौद्रध्यान के गुणस्थान
- धर्मध्यान का स्वरूप
- धर्मध्यान के भेद
- आज्ञाविचय
- अपायविचय
- विपाकविचय
- संस्थानविचय
- संस्थानविचय के भेद
- पदस्थध्यान
- पिण्डस्थध्यान
- पंच-धारणाएँ
- पृथ्वीधारणा
- अग्निधारणा
- वायु और जलधारणा
- तत्त्वधारणा
- रूपस्थध्यान
- रूपातीतध्यान
- धर्मध्यान के स्वामी
- शुक्ल-ध्यान का स्वरूप
- पृथक्त्ववितर्कवीचार
- एकत्ववितर्क अविचार
- सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती
- व्युपरतक्रियानिवृत्ति
- चौदहवें गुणस्थान...
- शुक्लध्यान के गुणस्थान
- अन्तिम मंगल

मंगलाचरण

सिद्ध-देव जिन श्रेष्ठ हैं, परमेष्ठी-पद रूप।
नमता सम्यक्-ध्यान में, बनूँ आप्त-अनुरूप॥ 1 ॥

सिद्ध-देव जो श्रेष्ठ जिनवर हैं वे परमेष्ठी-पद में स्थित हैं उन्हें मैं समीचीन-ध्यान में नमन करता हूँ जिसके फलस्वरूप मैं भी उनके समान सिद्ध-अवस्था को प्राप्त कर सकूँ।

(भूमिका)

पर-पदार्थ संयोग से, कर्म-बंध संसार।
भोग-तजे चिंता मिटे, ध्यान-करें भव-पार॥ 2 ॥

आत्मा से भिन्न पर-पदार्थों के मिलने पर उनमें आसक्ति होने से कर्मों का (पापों का) बंध होता है जिससे संसार में परिभ्रमण होता है और सांसारिक विषय-भोगों के त्याग कर देने पर चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप सम्यक्ध्यान प्रकट होता है अंत में आत्मा संसार रूपी समुद्र से पार हो जाती है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

(संसार का लक्षण)

कर्म-बंध गति-आगति, होते जिसमें काम।
चारों गतियों में भ्रमण, जिसका भव है नाम॥ 3 ॥

जिसमें कर्मों का बंध, जन्म-मरण और देव, मनुष्य, नरक तथा तिर्यंच गति में भ्रमण चलता रहता है उसका नाम संसार है।

(मोक्ष का स्वरूप)

सर्व-कर्म का नाश जब, जहाँ होय वह मोक्ष।
निर्ग्रन्थों को प्राप्त हो, सिद्ध बनाता मोक्ष॥ 4 ॥

जब निर्ग्रन्थ-मुनियों के जहाँ सभी अष्टकर्मों का क्षय होता है वह मोक्ष कहलाता है, यह मोक्ष सिद्ध-परमात्मा बना देता है।

(भव्य का लक्षण)

रत्नत्रय-मय मोक्ष-मग, पाता है वह भव्य।
मोक्ष-मार्ग अरु मोक्ष को, पाता नहीं अभव्य॥ 5॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग को जो प्राप्त कर सकता है वह भव्य जीव कहलाता है तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष को जो प्राप्त नहीं कर सकता वह अभव्य जीव कहलाता है।

(धर्माधार दया)

वस्तु-स्वभावरु धर्मदश, रत्नत्रय हैं धर्म।
दया-धर्म आधार है, जिसके बिना अधर्म॥ 6॥

वस्तु-स्वभाव, दसधर्म, रत्नत्रय और दया ये धर्म कहे गये हैं जिनमें दया-धर्म के पालन न करने पर सभी अधर्म जानना चाहिए।

(लक्ष्य और सोपान)

वस्तु-स्वभाव सु-लक्ष्य हो, सच्चा-सौख्य स्वरूप।
दया आदि सोपान हैं, शिव-मंजिल अनुरूप॥ 7॥

वस्तु-स्वभाव हमारा उत्तम लक्ष्य है वह सच्चे सुख स्वरूप माना गया है। दया, रत्नत्रय और दसधर्म ये वस्तु-स्वभाव रूप मोक्ष-मंजिल की सीढ़ियाँ कही गई हैं।

विशेष: क्रोध का अभाव रूप परिणाम क्षमाधर्म कहलाता है,

मान का अभाव या मृदुता का भाव मार्दवधर्म कहलाता है, मायाचार का अभाव या सरलता रूप भाव आर्जवधर्म कहलाता है, निर्लोभता या पवित्रता का नाम शौचधर्म है, अहितकर-वचनों का त्याग या सज्जनों से हितकर-वचन बोलना सत्यधर्म है, इन्द्रियों को पाप-कार्य से बचाना संयमधर्म कहलाता है, कर्म-क्षय के लिए उपवासादि अनुष्ठान तप-धर्म कहलाता है। संयत लोगों के लिए रत्नत्रय पालन का उपदेश, नियम देने रूप मुनियों का त्यागधर्म है, निजात्मा के अलावा परमाणुमात्र भी पर-वस्तु में मोह नहीं होना आकिञ्चन्यधर्म कहलाता है और सर्व महिलाओं से वैराग्य-भाव तथा आत्मलीनता रूप परिणाम का होना ब्रह्मचर्यधर्म कहलाता है। ये सभी दशों धर्म मोक्ष-प्राप्ति की भावना से पालन किए जाते हैं, अतः ''उत्तम'' इस विशेषण से युक्त होते हैं। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय आहारों का त्याग करना उपवास, भूख से कम खाना अवमौदर्य, कोई नियमपूर्वक आहार लेना वृत्ति-परिसंख्यान, दुग्ध या नमक आदिक षट् रसों या कुछ रसों का त्याग करना रसपरित्याग, एकान्त-स्थान में शय्या व आसन लगाना विविक्त-शय्यासन और समता पूर्वक कष्टों को सहन करना कायक्लेश तप कहलाता है, ऐसे ये छह बहिरंग तप हैं। तथा दोषों का परिमार्जन करना प्रायश्चित्त, वीतराग का आदर व नमनादि करना विनय, निर्ग्रन्थों की सेवा वैयावृत्त, आगम का पठनादि करना स्वाध्याय, शरीरादि पर-पदार्थों से निस्पृह हो परमात्मलीनता रूप रहना व्युत्सर्ग और धर्म, शुक्ल रूप परिणाम ध्यान तप कहलाता है, ऐसे

ये छह अंतरंग तप हैं।

(आत्महित कैसे?)

आतम-हित शिव-सौख्य है, आकुलता से दूर।
रत्नत्रय से प्राप्त हो, आत्म-गुणों से पूर॥ 8॥

आत्मा का हित; आत्म-गुणों से परिपूर्ण मोक्ष-सुख रूप है, उस सुख में इन्द्रिय-विषयों की इच्छा रूप आकुलता नहीं होती और वह सुख रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग से प्राप्त होता है।

(ध्यान-साधना हेतु चिन्तवन)

मन यह वानर-सम कहा, बड़ी चपलता मान।
ज्ञान, ध्यान में लीन जब, आत्म-शांति सुख जान॥ 9॥

अपना मन बड़ा ही चंचल बंदर सदृश मानना चाहिए। हम जब मन को एकाग्र करके ज्ञान-ध्यान में लीन हो जाते हैं तब बड़ी शान्ति व सुख की प्राप्ति होती है।

मनस्-भूत को धर्म में, सदा लगाना ज्ञान।
पाप-बंध से दूर हों, पाते समता-ध्यान॥ 10॥

मन रूपी भूत को खाली छोड़ने की बजाय धर्म-कार्य में लगाना यह ज्ञानीपुरुष का कार्य है। जिसके फलस्वरूप हम पाप-कर्म के बंध से दूर होकर समता-मय ध्यान की प्राप्ति कर लेते हैं।

अक्ष-खिड़कियों से सदा, विषय-पवन का जोर।
अगर बंद हों खिड़कियाँ, निज-सुख की हो भोर॥ 11॥

इन्द्रिय रूपी खिड़कियों से हमेशा आने वाली पंचेन्द्रियों के विषयों की वायु बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। अगर इन्द्रिय रूपी

खिड़कियों को बंद कर अपनी आत्मा की ओर ध्यान लगायें तो अपने आत्म-सुख की सुबह हो जावे।

पैर व मुख अन्दर करे, कछुआ पीठ दिखाय।
बाधक से ध्यानी बचे, संयम-सुख महकाय॥ 12॥

बाधक से बचने के लिए जैसे कछुआ अपनी पीठ की आड़ में पैर और मुख अन्दर की ओर सुरक्षित रख लेता है, वैसे ही ध्यानी अशुभ-कर्मों के आस्रव से बचने के लिए ध्यान व एकाग्रता की सहायता से अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने काबू में कर संयम और सुख की सुगंधि पाता है अर्थात् अलौकिक-सुख का अनुभव करता है।

वायु बहती वेग से, जल में उठें तरंग।
विषयों की वायु रुके, निर्मल-आत्म विरंग॥ 13॥

जैसे हवा के तीव्र गति से बहने पर जल में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं और उस जल में हमें अपना प्रतिबिम्ब (छाया) दर्शित नहीं होता वैसे ही मोही के लिए विषय-वासना की वायु से आत्मा का दर्शन नहीं होता और जब योगी विषय-वासनामुक्त होकर या निर्मोही सांसारिक व्यवहार से दूर होकर अपनी आत्मा को ध्यान से निश्चिंत-शान्त बना लेता है तब निर्मल-विरंग आत्मा का दर्शन होता है।

रवि-किरणें बिखरी तपें, कागज जला न देत।
काँच साथ दुर्बीन का, भष्मसात् कर देत॥ 14॥

सूर्य की किरणें पूरे जग में फैल कर तपती हुईं भी कागज को जला नहीं पातीं लेकिन दूरबीन के कांच द्वारा सभी किरणों को केन्द्रित कर कागज पर स्थिर रखने से थोड़े समय में ही कागज जलकर भस्म हो जाता है।

मन पूरे जग में फिरे, एक-जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान॥ 15॥

मानव का मन जब तक पूरे जग में भटकता रहता है तब तक एकाग्रता पूर्वक आत्मा का ध्यान संभव नहीं होता और जब उत्तम-शक्ति (वज्रवृषभनाराच संहनन) के साथ निर्ग्रन्थ बन एकाग्र होकर अपनी आत्मा पर अन्तर्मुहूर्त्त काल तक शुक्लध्यान लगाया जाता है तब घातिया-कर्मों का क्षय हो जाता है और केवलज्ञान प्रकट हो जाता है।

(ध्यान की अवस्थायें)

समता, ध्यान-समाधि वा, गुप्ति, शुद्ध-उपयोग।
निजानुभव निश्चय कहो, यथाख्यात सत्योग॥ 16॥

समता, गुप्ति, शुद्धोपयोग, ध्यान- समाधि, निजानुभव, निश्चय और यथाख्यात ये सभी समीचीन-योग की वृद्धि रूप अवस्थायें हैं। (इसका वर्णन आगे किया गया है।)

(ध्यान के योग्य सामग्री)

द्रव्य, क्षेत्र, सु-काल सह, भाव जीव जब पाय।
समता ध्यानादिक मिलें, सुयोग्य वह बन जाय॥ 17॥

सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये सभी जब जीव प्राप्त करता है तभी जीव को समता व ध्यानादिक प्राप्त होते हैं और वह मोक्षमार्ग के योग्य बन जाता है।

(ध्यान हेतु द्रव्य)

जीव-द्रव्य आधार है, ध्याता, साध्य, स्वजीव।
संहनन आदि अजीव हैं, हेतु देव, गुरु जीव॥ 18॥

ध्यान के लिए जीव- द्रव्य आधार रूप माना है। ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला, साध्य अर्थात् जिसकी साधना करना है वह अपना जीवात्म रूप द्रव्य है और संहनन आदि अजीव-द्रव्य कहे गये हैं। इसी तरह साधन रूप वीतराग-देव एवं निर्ग्रन्थ-गुरु जीव-द्रव्य कहलाते हैं।

(संहनन)

वज्रवृषभनाराच यह, संहनन श्रेष्ठ सुजान।
शुभ-ध्यानी बन कर्म-क्षय, होवे मोक्ष महान॥ 19॥

वज्रवृषभनाराचसंहनन ध्यान के लिए उत्तम-संहनन जानना चाहिए इसी संहनन से शुक्ल-ध्यान द्वारा कर्मों का क्षय कर आत्मा महान मोक्ष-पद को पा लेती है।

(आसन)

खड्गासन व पद्मासन, सिद्धासन का योग।
वीरासन व वज्रासन, ध्यानी बने अयोग॥ 20॥

खड्गासन, पद्मासन, सिद्धासन, वीरासन और वज्रासन आदि से ध्यान करके ध्यानी-योगी कर्मों से मुक्त होकर योग की

उपरिम व उत्कृष्ट अयोग अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

(आहार)

अशन-राजसिक, तामसिक, जिसे छोड़ना श्रेष्ठ।
सात्विक, प्रासुक हो अशन, ध्यान बढ़े, वय जेष्ठ॥ 21॥

राजसिक, तामसिक भोजन छोड़कर सात्विक भोजन को प्रासुक करके ग्रहण करना श्रेष्ठ कार्य है जिसके फलस्वरूप ध्यान की वृद्धि होती है और ध्यानी लम्बी उम्र का जीवन जीता है।

नशा, आमिस, कंद तज, निशि में छोड़े भोज।
मर्यादित, शोधित-अशन, स्वस्थ-ध्यान हो रोज॥ 22॥

ध्यान को चाहने वाला अगर मांस, नशीले पदार्थ, कंदमूल तथा रात्रि-भोजन छोड़कर मर्यादित व शोधन किये गये भोजन का सेवन करता है तो नित्य-प्रतिदिन स्वस्थ-ध्यान की प्राप्ति होती है।

एक बार भोजन करे, योगी वह कहलाय।
दोय बार भोगी करे, त्रय रोगी हो जाय॥ 23॥

जो चौबीस घण्टों के अंदर; दिन में एक बार भोजन करता है वह योगी कहलाता है। जो दो बार भोजन करता है वह भोगी कहलाता है तथा जो तीन बार भोजन करता है वह रोगी कहलाता है, उसे ध्यान की प्राप्ति अतिदुर्लभ है।

अर्द्ध-उदर भोजन करे, दुगुना-जल, हो ध्यान।
तिगुना-परिश्रम जो करे, शतायु हो धीमान॥ 24॥

जो योगी आधा पेट अन्न से भरकर उससे दुगुने जल का सेवन करते हुए तिगुना परिश्रम करता है अर्थात् पूर्ण दिवस

निस्प्रमाद व्यतीत करता है उस योगी की उम्र शतवर्ष तक चल सकती है।

खोवा, मेवा आदि हैं, जहाँ पदार्थ गरिष्ठ।
जो पदार्थ रुचिकर लगें, कहलाते हैं इष्ट॥ 25॥

मावा और कुछ मेवे आदिक पदार्थ गरिष्ठ (भारी) पदार्थ कहलाते हैं और जो पदार्थ मन के लिए अत्यन्त प्रभावित करते हैं या जिनके बिना भोजन नहीं रुचता वे इष्ट-पदार्थ कहलाते हैं।

(बाधक-तत्त्व)

इष्ट, गरिष्ठ-पदार्थ वा, स्त्री का संसर्ग।
व्यसन सभी सद्ध्यान में, बाधा दें उपसर्ग॥ 26॥

इष्ट, गरिष्ठ-पदार्थ एवं स्त्री का सम्पर्क (स्त्रियों को भी पुरुषों का सम्पर्क) तथा सप्त-व्यसन ये सभी समीचीन-ध्यान में बाधक और उपसर्ग के समान होते हैं।

(साधक को लाभ)

एकाशन उपवास हो, हल्के-पन-सह ध्यान।
ना प्रमाद-निद्रा जगे, मुनि-अनुभूति सुजान॥ 27॥

एकाशन एवं उपवास के दिन बहुत ही हल्केपन के साथ या निश्चिंत और निर्भार मन के साथ ध्यान सम्पन्न होता है। प्रमाद रूप निद्रा आने की संभावना नहीं होती; ऐसी मुनिजनों की अनुभूति है ऐसा जानो।

स्पर्शन, रसना रहीं, काम-इन्द्रियाँ जान।
कामजयी के ऊर्ध्व में, वहे ऊर्जा मान॥ 28॥

स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियाँ कामेन्द्रियां हैं, इन कामेन्द्रियों को जीतने वाले व्यक्ति की ऊर्जा ऊर्ध्वगति की ओर पहुँचाने वाली ऊर्ध्वगामिनी होती है, ऐसा मानना चाहिए।

(ध्यान की सुयोग्य विधि व प्रक्रिया)

ममत्व तन का त्याग हो, कायोत्सर्ग महान।
आवर्त नमन साथ हो, निषद्या-सह सु-ध्यान॥ 29॥

शरीर के ममत्व (एवं अन्य पदार्थों के ममत्व को) छोड़कर खड़े होकर ध्यान करना कायोत्सर्ग कहलाता है। चारों दिशाओं में तीन-तीन आर्वत करना (घड़ी के कांटे घूमने की दिशा में करमुकुल-अंजुली को तीन-तीन बार घुमाते हुए) हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमन करना एवं दो बार गवासन में (पूर्व व उत्तर में) बैठकर नमन रूप निषद्या से प्रणाम के साथ ध्यान करना (पूर्व व उत्तर दिशि में मुखकर स्थिर होना) यह सम्यक्ध्यान या सामायिक कहलाती है।

(ध्यान में सावधानियाँ)

नेत्र खुले ना बंद हों, नाशा-दृष्टि सुहाय।
अधो दाँत फिर ऊर्ध्व की, पंक्ति सुसौम्य कहाय॥ 30॥

ध्यान करते समय अपने दोनों नेत्र न अधिक खुले हों और न ही बंद हों बल्कि नाशा के अग्रभाग की सीध में दृष्टि बड़ी शोभनीय लगती है। दांतों की अधोपंक्तियों के सामने ऊर्ध्व दांतों की पंक्तियाँ सुन्दर सौम्य कहलाती हैं।

सर्व अक्ष-व्यापार को, विराम योगी देत।
धीरे-धीरे श्वास-ले, ध्यान-एक कर लेत॥ 31॥

सभी इन्द्रियों की क्रिया को रोक कर योगी अपनी स्वाभाविक-श्वास की गति को ध्यान में रखता हुआ ध्यान की एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है।

नहीं दृष्टि हो चंचला, आसन-विजयी पूर्ण।
भौतिक-साधन दूर सब, प्रकृति-साथ सम्पूर्ण॥ 32॥

निश्चल (नाशाग्र) दृष्टि के साथ आसन की दृढ़ता रखते हुए योगी भौतिक-साधनों (पंखा, ए.सी., कूलर आदि) से दूर रहते हुए प्रकृति के सौम्य व शांत-वातावरण में ध्यान सम्पन्न करता है।

(ध्येय व साधन द्रव्य)

शुद्ध-आत्मा ध्येय है, परमेष्ठी, नव-देव।
निमित्त-द्रव्य व तत्त्व भी, अस्तिकाय सदैव॥ 33॥

शुद्ध-आत्मा ध्यान करने योग्य ध्येय-द्रव्य कहलाता है परमेष्ठी, नव-देवता, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व और पञ्चास्तिकाय ये ध्यान की एकाग्रता में सहायक रूप सदैव चिन्तन करने योग्य निमित्त द्रव्य कहलाते हैं।

(ध्यान हेतु क्षेत्र)

ध्यान-क्षेत्र एकान्त हो, बाधाओं से दूर।
जंगल, गृह, मंदिर रहे, प्रसन्नता से पूर॥ 34॥

ध्यान का क्षेत्र एकान्त और बाधक वातावरण से रहित होना चाहिए। ऐसे ध्यान का वातावरण जंगल में, खाली घर अथवा

जिनमंदिर (जिनालय) में प्राप्त होता है। ऐसे उत्तम-वातावरण में प्रसन्नता पूर्वक ध्यान सम्पन्न होता है।

(ध्यान हेतु काल)

सुबह, मध्य व शाम में, नित्य करें शुभ-ध्यान।
योग सुषुम्ना-स्वर चले, परम-शांति हो जान॥ 35॥

प्रातः सूर्योदय के निकट, मध्याह्न में बारह बजे के निकट और सायंकाल में सूर्यास्त के करीब सुषुम्णा-नाड़ी-योग के काल में जब सूर्य व चन्द्र स्वर युगपत् सहज रूप से चलते हैं उस समय प्रतिदिन शुभ-ध्यान करने से परमशान्ति की प्राप्ति होती है।

छह, चार व दोय घड़ी, सामायिक में ध्यान।
उत्तम, मध्यम व जघन, काल तीन पहचान॥ 36॥

सामायिक रूपी ध्यान में छह घड़ी (दो घण्टा चौबीस मिनिट) उत्कृष्टकाल, चार घड़ी (एक घण्टा छत्तीस मिनिट) मध्यमकाल, दो घड़ी (अड़तालीस मिनिट) जघन्य काल जानना चाहिए। इन कालों में शुभ-ध्यान करने से मन अधिकाधिक एकाग्र होता चला जाता है।

(ध्यान हेतु भाव)

सब जीवों पर साम्य हो, संयम-भावन नेक।
आर्त्त, रौद्र का त्याग हो, समता पूर्ण विवेक॥ 37॥

जगत् के सर्व प्राणियों पर भेद-भाव या राग-द्वेष के बिना समता रहना, इन्द्रियों को पापों से बचाकर प्राणियों की रक्षा में सावधानी रखना, शुभ-भावनाओं को भाना और आर्त्त व रौद्र

ध्यानों का त्याग करना यह विवेकी के सामायिक भाव रूपी सम्यक् ध्यान कहलाता है।

(समता)

ना राजा ना रंक लख, ना ही सौम्य कुरूप।
आतम इनसे भिन्न है, यति लखता सम रूप॥ 38॥

मेरी दृष्टि में न कोई राजा है, न कोई गरीब है, न कोई सुन्दर है और न ही कोई कुरूप है बल्कि आत्मा इन सभी बाहरी अवस्थाओं से विलग, समान रूप से अनन्त-शक्तिवाला होता है; ऐसा वह ध्यान हेतु यत्न-पुरुषार्थ करने वाला योगी विचार करता है।

(संयम)

इन्द्रिय-विषयों में जहाँ, भोग-रुचि का त्याग।
त्रस, थावर का घात तज, तजें जगत् से राग॥ 39॥

स्पर्शनेन्द्रिय के कोमल, कठोर, ठण्डा गर्म आदि, रसनेन्द्रिय के खट्टा, मीठा आदि, घ्राणेन्द्रिय के सुगन्ध, दुर्गन्ध, चक्षुरेन्द्रिय के काला, पीला आदि और कर्णेन्द्रिय के स्वर, शब्दादि रूप पंचेन्द्रियों के विषयों में जिस योगी के भोग करने की रुचि नहीं होती और लट, सीप, शंख आदि द्विन्द्रिय; चींटी, तिरूला, बिच्छू आदि त्रीन्द्रिय; मच्छर, मक्खी, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय; तथा चूहा, मेंढक, मछली, गाय मनुष्यादि पंचेन्द्रिय ऐसे त्रस जीवों एवं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों की हिंसा को छोड़कर; संसार से राग-द्वेष व मोह का जो त्याग कर देता है वह ध्यान करने योग्य सावधानी-संयमी कहा जाता है।

(सद्भावनाओं के प्रकार)

जहाँ भावना धर्म की, पच्चिस सोलह जान।
बारह, सप्त व चार भी, त्रि, द्वि, इक शुभ मान॥40॥

जहाँ धर्म सम्बन्धी पच्चीस, सोलह, बारह, सात, चार, तीन, दो और एक इस तरह सत्तर प्रकार की सद्-भावनाएँ भावित की जाती हैं वहाँ उन्हें शुभभावना रूप मानना चाहिए।

पांच-व्रतों की भावना, पांच-पांच पहचान।
दर्शनविशुद्धि आदि भी, सोलह-भावन मान॥41॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप व्रतों की रक्षा के लिए पांच-पांच-भावनाएँ जानो तथा दर्शन-विशुद्धि आदिक सोलह-भावनाएँ मानो।

अनित्य आदिक-भावना, बारह-भावन जान।
शास्त्राभ्यास जिन-स्तुति, आदिक सात सु-मान॥42॥

अनित्य आदिक अनुप्रेक्षाओं को बारह-भावना रूप जानो तथा शास्त्राभ्यास और जिनेन्द्र-स्तुति आदि के लिए सात-भावनाएँ मानो।

मैत्री, प्रमोद-भावना, करुणा भी शुभ रूप।
मध्यस्थी-चौथी रही, मोक्षमार्ग-अनुरूप॥ 43॥

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ इन चार-भावनाओं के लिए मोक्षमार्ग के अनुरूप शुभ-भावनाएँ जानना चाहिए।

समदर्शन वा ज्ञान, व्रत, रत्नत्रय हैं जान।
संवेग व वैराग्य भी, शुभ-भावन पहचान॥ 44॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनको रत्नत्रय रूप तीन- भावनाएँ जानो तथा संवेग और वैराग्य इन दोनों को शुभभावना रूप मानो।

आत्म-तत्त्व की भावना, एक-भावना नेक।
शिवसुख की ये भावना, करे आत्म-अभिषेक॥ 45 ॥

अपनी आत्म-तत्त्व की भावना, एक-भावना बड़ी नेक-सुन्दर रूप शिव (मोक्ष) सुख देने वाली भावना; अपनी आत्मा का अभिषेक कर, अपनी आत्मा के अष्ट-कर्मों को धोकर, निर्मल-अवस्था को प्राप्त कराने वाली भावना कहलाती है।

(आर्त्तध्यान का स्वरूप)

अर्त्तिभाव ही आर्त्त है, जिसका दुःख है नाम।
अशुभ-बंध, हो दुर्गति, बिगड़ें धर्म सु-काम॥ 46 ॥

अर्ति अर्थात् दुःख और ऐसे इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा-चिंतवन और निदान नामक दुःख रूप ध्यानों को आर्त्तध्यान नाम से कहा जाता है। ऐसे आर्त्तध्यान को करने से धर्म के अच्छे कार्य बिगड़ जाते हैं और अशुभ- कर्मों का बंध होता है तथा आत्मा तिर्यंच आदि दुर्गतियों को प्राप्त करती है।

(इष्ट-वियोग)

जहाँ नष्ट हों इष्ट वे, पदार्थ या हों दूर।
कहाँ मिलेंगे, खेद यह, इष्ट-वियोगी पूर॥ 47 ॥

जहाँ जब मन-पसंद पदार्थों या व्यक्तियों के दूर हो जाने पर, चोरी हो जाने पर या उन पदार्थों के समाप्त आदि हो जाने के

सम्बन्ध में उनके कहाँ, कब मिलने रूप संयोग के लिए जो त्रिकाल-सम्बन्धी खेद, चिंता या विकलता होती है वहाँ तब इष्ट-वियोग नामक आर्त्तध्यान कहा जाता है।

(अनिष्ट-संयोग)

जहाँ अनिष्ट-पदार्थ के, हट जाने का भाव।
अनिष्ट-संयोगी बने, मिलता नहीं स्वभाव॥ 48॥

जहाँ जब अपसंद पदार्थों या व्यक्तियों के मिलने पर उनके या उनसे दूर हो जाने के सम्बन्ध में जो चिन्तवन उत्पन्न होता है उसे अपने वास्तविक स्वभाव से दूर रखने वाला अनिष्ट-संयोग नामक आर्त्तध्यान कहते हैं।

(पीड़ा-चिन्तवन)

तन की पीड़ा होय जब, रोगादिक हों मान।
रोग-भूख आदिक मिटें, पीड़ा-चिन्तन ध्यान॥ 49॥

संसारी जीवों के मन में रोगादिक से शारीरिक कष्टों के सम्बन्ध में तथा भूख-प्यास आदि की वेदना को शमन करने के सम्बन्ध में जो विचार चलते हैं उसे पीड़ा-चिन्तवन नामक ध्यान कहा गया है।

(निदान)

इन्द्रादिक की सम्पदा, इन्द्रिय के वे भोग।
आगे हमको प्राप्त हों, यही निदान प्रयोग॥ 50॥

अपने सांसारिक जीवन में इन्द्र, चक्रवर्ती, राजा और श्रेष्ठी आदि के सांसारिक वैभव या पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की आगे

मुझे प्राप्ति हो ऐसा विचार करना निदान नामक आर्त्तध्यान कहलाता है।

(आर्त्तध्यान के गुणस्थान)

प्रथम पाँच-गुणथान तक, सभी आर्त्त हों ध्यान।
छठवे उस गुणथान में, बिन निदान त्रय मान॥ 51॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत ऐसे पांच गुणस्थानों तक सभी चारों आर्त्तध्यान यथासंभव होते रहते हैं लेकिन प्रमत्त-संयत नामक मुनियों के छठे गुणस्थान में निदान को छोड़ कर इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग और पीड़ाचिंतन ऐसे तीन आर्त्तध्यान यथा समय होना संभव है।

(रौद्र-ध्यान का स्वरूप)

रुद्र-भाव ही रौद्र है, क्रूर उठें परिणाम।
जिसको भी तजना कहूँ, तभी होय शुभ-ध्यान॥ 52॥

रुद्र अर्थात् क्रूर-आशयरूप (हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद और परिग्रहानंद रूप) जो रौद्र-ध्यानात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं उनको छोड़ देना चाहिए तभी शुभ-ध्यान की उपलब्धि होती है।

(हिंसानंद)

जहाँ जीव का घात हो, ऐसा कार्य सहर्ष।
करना हिंसानंद है, जीवन ना आदर्श॥ 53॥

जहाँ त्रस और स्थावर जीवों का घात होता है ऐसे कार्यों में हर्षित होना या अच्छा मानना हिंसानंद नामक रौद्रध्यान कहलाता

है। ऐसे हिंसक (प्राणी वध, आरम्भादिक) कार्यों के करने वाले जीवों को लोग सदाचारी नहीं मानते।

(मृषानंद)

झूठ-वचन जो पाप हैं, उनका जहाँ प्रयोग।
मृषानंद वह ध्यान है, शुद्ध न हो उपयोग॥ 54॥

जो असत्य-वचन पापरूप या हिंसा के कारण होते हैं उन्हें बोलना, बुलवाना आदि मृषानंद-ध्यान कहलाता है। ऐसा कार्य करने से अपनी आत्मा का उपयोग अशुद्ध या अशुभ रूप होता है।

(चौर्यानन्द)

पर-पदार्थ का हो हरण, छल-कपटी-मन होय।
चौर्यानन्दी-ध्यान है, दुर्गति में गम-जोय॥ 55॥

दूसरों के धनादिक-हरण करने से मन; छल व कपट वाला हो जाने से चौर्यानन्दी-ध्यान कहा जाता है, जो दुर्गतियों में पहुँचाकर बड़ा दुःखदायी होता है।

(परिग्रहानन्द)

इच्छाओं का जाल जो, बुने संग का भार।
परिग्रहानंदी बने, नारक-दुख्ख-मझार॥ 56॥

जो आत्मा सांसारिक-भोगों की इच्छाओं का जाल फैलाकर परिग्रह का भार बढ़ाकर उसमें हर्ष मनाता है। वह मोही, परिग्रहानन्द-रौद्र-ध्यानी बन नरक-आयु का आश्रव कर नरकों के बीच उत्पन्न होकर महादुःखों को पाता है।

(रौद्रध्यान के गुणस्थान)

प्रथम पाँच-गुणथान तक, सभी रौद्र हों ध्यान।
समकित, अणुव्रत हों जहाँ, तीव्र-रौद्र ना जान॥ 57॥

प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान तक सभी रौद्र-ध्यान यथासंभव होते हैं लेकिन सम्यग्दर्शन और अणुव्रतों के साथ प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य रूप चार गुणों की सम्पन्नता तथा स्थूल रूप से पांच पापों अथवा अन्याय, अनीति का त्याग होने से वे रौद्र-ध्यान तीव्र रूप में नहीं होते बल्कि अन्याय, अनीति को पराजित करने हेतु किये जाते हैं। [जैसे- राम ने रावण की अन्याय, अनीति का खण्डन करने युद्ध किया था।]

(धर्मध्यान का स्वरूप)

आर्त्त, रौद्र को त्याग कर, करें धर्म-मय ध्यान।
राग-द्वेष वा पाप बिन, सामायिक पहचान॥ 58॥

आर्त्त और रौद्र-ध्यानों को छोड़कर धर्मध्यान करना चाहिए। जिस धर्मध्यान में जब राग-द्वेष और पापों से रहित अवस्था होती है तब ध्यान की एक उच्च-अवस्था सामायिक की उपलब्धि होती है, ऐसा जानो।

सदा धर्म-मय भाव हो, आवश्यक में लीन।
धर्म-ध्यान तब साथ हो, वही भव्य स्वाधीन॥ 59॥

मुनियों से संबंधित सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग रूप षट् आवश्यकों में तथा श्रावकों से सम्बन्धित वीतरागदेव- पूजन, निर्ग्रन्थगुरु-उपासना, चार-

अनुयोगों का स्वाध्याय, प्राणी-रक्षा रूप संयम, उपवास और रसादि के त्याग रूप तप में एवं आहार, औषध, उपकरण और आवास रूप चार तरह के दान रूप षट् कर्मों में जो धर्ममय शुभ-भाव होता है उसे धर्मध्यान कहते हैं। ऐसा धर्मध्यान करने से भव्यात्मा को स्वाधीन आनंद रूप अवस्था की प्राप्ति होती है।

(धर्मध्यान के भेद)

आज्ञा-विचय, अपाय भी, अरु विपाक, संस्थान।
चार धर्म ये ध्यान हैं, जग में शुभ हैं ध्यान॥ 60॥

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चारों धर्म-ध्यान जगत् में शुभ-ध्यान माने गये हैं।

(आज्ञाविचय)

वीतराग की देशना, द्रव्य, तत्त्व-उपदेश।
रत्नत्रय-मय मोक्षमग, गहें मान आदेश॥ 61॥

वीतराग (तीर्थंकर या अरिहंत भगवान) की वाणी से प्राप्त छहद्रव्य, सप्ततत्त्व और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय-मय मोक्षमार्ग का जो उपदेश है उसे हम आदेश समान मानकर श्रद्धा से आत्म- कल्याण हेतु स्वीकार करें, यही चिंतवन की विचारधारा आज्ञाविचय-धर्मध्यान कही जाती है।

(अपायविचय)

दुख-मय यह संसार है, कुदर्श पाँचों-पाप।
छोड़ें यही अपाय है, ध्यानी दें जिन-जाप॥ 62॥

रोग, भूख, प्यास, ठण्डी, गर्मी आदिक रूप शारीरिक दुःख कटु व तिरस्कार आदि वचन रूप वाचनिक दुःख एवं चिंता एवं भोगाकांक्षादि रूप मानसिक दुःख से परिपूर्ण इस संसार को एवं ऐसे दुखदायी संसार के कारण स्वरूप एकान्त, विपरीत, वैनयिक, संशय और अज्ञान रूप पंच-मिथ्यात्वों को तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पंच-पापों से यह संसारी आत्मा कब मुक्त होगी ऐसा चिंतवन करना अपायविचय-धर्मध्यान कहलाता है। इस कार्य की सफलता हेतु जिनेन्द्र-प्रभु के नाम की जाप देना सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए।

(विपाकविचय)

कर्मों का जो पाक-फल, भव-सुख, दुख दे जान।
लख-चौरासी योनि में, चउगति-भ्रमत अजान॥ 63॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन अष्ट-कर्मों का क्रमशः ज्ञान में बाधक बनना, दर्शन न होने देना, संसार से मोहित (आकृष्ट) करना, सुख-दुःख का अनुभव करना, एक-गति में रोके रहना, सुन्दर, असुन्दर शरीर प्राप्त कराना, उच्च-नीच कुल में पैदा कराना और दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा शक्ति में बाधा उत्पन्न कराने रूप फल इस चतुर्गति रूप संसार में यह अज्ञानी आत्मा भोगता हुआ चौरासीलाख योनि रूप चतुर्गति-संसार में अनंतकाल तक परिभ्रमण करता रहता है इत्यादि रूप-चिंतवन करना विपाकविचय धर्म-ध्यान कहलाता है।

(संस्थानविचय)

तीन-लोक का सब गणित, शुद्ध-द्रव्य उपयोग।
मुनि संस्थान-विचय करें, ध्यान रहा सद्योग॥ 64॥

तीनों-लोकों की रचना का सम्पूर्ण-गणित या राजू एवं योजन आदि के रूप में लोक के प्रमाण तथा द्रव्यों के शुद्धस्वरूप और आत्मा के शुद्धोपयोग की प्राप्ति में निमित्त पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ व रूपातीत ध्यानों का मुनियों के द्वारा चिंतवन किया जाना संस्थानविचय-धर्मध्यान रूप उत्तम-योग कहलाता है।

(संस्थानविचय के भेद)

पदस्थ अरु पिंडस्थ वा, हैं रूपस्थ सु-ध्यान।
रूपातीत महान ये, शिव-सुख दें कल्याण॥ 65॥

संस्थान-विचय के भेदरूप पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत- ध्यान ये महान हैं और ये शुक्लध्यान के साधन बनकर मोक्ष-सुख प्रदान कर आत्मा का कल्याण करते हैं।

(पदस्थध्यान)

मंत्र-वाक्य का ध्यान हो, वीतराग शुभ रूप।
पदस्थ जानो ध्यान वह, हो एकाग्र स्वरूप॥ 66॥

वीतराग शुभ रूप णमोकार-मंत्र आदि वाक्यों या पदों का ध्यान पदस्थ-ध्यान कहलाता है जिस ध्यान से एकाग्र स्वरूप की प्राप्ति होती है।

णमोकार शुभ-मंत्र है, सब मंत्रों का राज।
शीघ्र अशुभ-विधि-नाशकर, सिद्ध बनावे काज॥ 67॥

सर्व-वीतराग मंत्रों में प्रधान राजा-सदृश णमोकार-मंत्र माना गया है जो मंत्र सर्व पाप-कर्मों का शीघ्र ही क्षय करके परमेष्ठी रूप सिद्ध-पद को प्राप्त करा देता है।

ओम् महा यह मंत्र है, परमेष्ठी का बीज।
द्वादशांग-सागर कहें, भव-सुख, शिव की चीज॥ 68॥

'ओम्' (ॐ) भी यह महामंत्र पंच-परमेष्ठियों के सम्पूर्ण-अर्थ को धारण करने वाला बीज के समान है और द्वादशांग रूप शास्त्र के सागर को धारण करने वाला होता हुआ संसार में जीवों को सुखी करते हुए मोक्ष-सुख तक पहुँचाने वाला है।

ह्रीं अक्षर जिन बुद्ध वा, हरि ब्रह्मा शिव रूप।
केवलज्ञानी, सार्वमय, जगत्-वंद्य सुख रूप॥ 69॥

'ह्रीं' यह अक्षर जिनेन्द्र स्वरूप वीतराग बुद्ध, हरि, ब्रह्मात्मा और शिव अर्थात् मोक्ष स्वरूप, केवलज्ञानी, सर्वज्ञ और जगत् से पूज्य होते हुए सुख-शान्ति का प्रदाता माना गया है।

अर्हं-अक्षर श्रेष्ठ है, अर्हत्-पद का नाम।
पूज्य रहे जो लोक में, ध्यावें, बनते काम॥ 70॥

'अर्हं' यह अक्षर सर्वश्रेष्ठ अर्हंत्-पद का वाचक है जो अरहंत पूर्णलोक में पूज्य माने गये हैं ऐसे अरिहंतों का ध्यान करने से पाप-कर्मों का क्षय होता है और पुण्य बढ़ने से सभी शुभ-कार्यों की सिद्धि होती है।

ह्रां रहा अरिहंत का, वाचक श्रेष्ठ महान।
घातिकर्म का नाश कर, जीवन-मुक्त सुजान॥ 71॥

'ह्राँ' यह अक्षर भी अरिहंत-परमेष्ठी का वाचक श्रेष्ठ व महान है जो घातिया-कर्मों का नाश करने वाले और पुनर्जन्म न लेने वाले, जीवन-मुक्त ऐसे अरिहंतों का ज्ञान करवाता है; ऐसा ध्यान करो।

ह्रीं रहा श्री सिद्ध का, वाचक श्रेष्ठ महान।
अष्ट-कर्म का नाशकर, गुण अनन्त की खान॥ 72॥

अष्ट-कर्मों का क्षय कर जो अनन्त-गुणों के भण्डार बने ऐसे सिद्ध-भगवन्तों का वाचक 'ह्रीं' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

ह्रूँ रहा आचार्य का, वाचक श्रेष्ठ महान।
पंचाचार-प्रधान हैं, करें सर्व-कल्याण॥ 73॥

पंचाचारों का जो मुख्यतः पालन करते हैं और सभी भव्यों के लिए रत्नत्रय-प्रदान करते हुए उनका कल्याण करते हैं, ऐसे आचार्य-परमेष्ठी का वाचक 'ह्रूँ' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

ह्रौं श्रेष्ठ वाचक सुधी, उपाध्याय का नाम।
द्वादशाङ्ग के ज्ञान से, मुनि पाते शिवधाम॥ 74॥

शिव अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति के पथ पर चलने वाले द्वादशांग के ज्ञानी-सुधी-उपाध्याय-परमेष्ठी रूप मुनिवर का वाचक 'ह्रौं' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

ह्रः अक्षर यह साधु का, वाचक श्रेष्ठ महान।
रत्नत्रय से आत्म में, लीन करें निज-ध्यान॥ 75॥

रत्नत्रय का पालन कर आत्मा में लीन होकर निज का ध्यान करने वाले निर्ग्रन्थ साधु-परमेष्ठी का वाचक 'ह्रः' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

अग्र ओम् पीछे जहाँ, नमः लगावें साथ।
उपरिम अक्षर-जाप दें, बनें लोक में नाथ॥ 76॥

उपरिम अक्षर 'ह्रीं' आदिक के पहले 'ओम्' (ॐ)अक्षर लगाकर तथा उन 'ह्रीं' आदिक के बाद 'नमः' लगाकर जाप-जपने से कर्मों का क्षयकर आत्मा लोक के नाथ अर्थात् सिद्धों के पद को परम्परा से प्राप्त कर लेता है।

(पिण्डस्थध्यान)

निजात्म के सम्बन्ध से, सद्गुण-गण का ध्यान।
कहा ध्यान पिंडस्थ वह, जिसमें निज-कल्याण॥ 77॥

अपनी-आत्मा में लीन होकर अपने ही गुणों का ध्यान करना पिण्डस्थ-ध्यान कहलाता है जिस ध्यान में ही अपनी-आत्मा के कल्याण का रहस्य छुपा होता है।

दर्शन, सुख, चारित्र-मय, दश-धर्मों से पूर्ण।
शक्ति अनन्त सुकोष निज, गुण अनन्त संपूर्ण। 78॥

दर्शन, सुख, चारित्रमयी अपनी-आत्मा उत्तम-क्षमा आदिक दश-धर्मों से परिपूर्ण है तथा अनन्त-शक्तियों का खजाना है और अनन्त-गुणों का धाम है ऐसा चिंतवन करना पिण्डस्थ-ध्यान कहलाता है।

(पंच-धारणाएँ)

पंच तरह की धारणा, करता ध्यानी होय।
पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, और तत्त्व संजोय॥ 79॥

पृथ्वीधारणा, अग्निधारणा, वायुधारणा, जलधारणा और तत्त्वधारणा ऐसी पंच-धारणाएँ सम्यक्ध्यान के लिए सुयोग्य मानी गईं हैं; इनका विधिवत् अभ्यास करने वाला योगी सम्यक्-ध्यानी कहलाता है।

(पृथ्वीधारणा)

मध्य-लोक है क्षीर-सम, सागर शान्त स्वरूप।
जम्बूद्वीप सहस्रदल, इक-लख योजन रूप॥ 80॥

अत्यन्त-शान्ति स्वरूप क्षीरसागर-समान मध्यलोक में एक-हजार पाँखुड़ी-सदृश एक-लाख योजन वाला जम्बूद्वीप स्थित है।

वहाँ कर्णिका-मध्य में, श्वेतासन-शुभ रूप।
जहाँ विराजित आतमा, बन निर्ग्रन्थ स्वरूप॥ 81॥

जम्बूद्वीप के बीचोंबीच निन्यानवे-हजार चालीस-योजन ऊँची कर्णिका के मध्य शुभ रूप धवल-आसन पर अपनी-आत्मा निर्ग्रन्थ रूप में विराजमान है ऐसा चिंतवन करना ''पृथ्वीधारणा'' कहलाती है।

(अग्निधारणा)

निज-नाभि में ऊर्ध्वमुख, स्वर्णिम-दल शुभ-मान।
सोलह-पांखुड़ि स्वर बसें, मध्य-बसे र्हं जान॥ 82॥

अपनी-नाभि से ऊर्ध्वमुखी स्वर्णमयी एक कमल उत्पन्न हुआ है जिस कमल की सोलह-पांखुड़ियों पर अ आ इ ई उ ऊ ॠ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे सोलह-स्वर क्रमशः विराजित हैं और कर्णिका के ऊपर बीचों-बीच 'र्ह्रं' अक्षर विराजित है ऐसा जानो।

अधो-मुखी हिय-मध्य में, कमल विराजित सोह।
अष्ट-पाँखुड़ी कर्म की, दहे ध्यान र्ह्रं होह॥ 83॥

अपने हृदय के मध्य में अधोमुखी एक कमल शोभित है जिस कमल की अष्ट-पाँखुड़ियों पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय नामक अष्ट-कर्म क्रमशः चिपके हुए हैं तथा बीचों-बीच कर्णिका पर विराजित 'र्ह्रं' अक्षर अपने अंदर स्थित 'र्' अक्षर से और नाभि-कमल के मध्यवर्ती 'र्ह्रं' के अंदर स्थित 'र्' अक्षर का संयोग एवं उन दोनों 'र्' का पारस्परिक घर्षण शुक्ल-ध्यानाग्नि प्रकट कर देता है और हम जैसे-जैसे एक-आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय की गहराई के चिन्तन में डूबते चले जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा ध्यान उत्तम से उत्तमता की ओर बढ़ता चला जाता है और ध्यान-रूपी अग्नि हृदय-स्थित कमल की पाँखुड़ियों पर चिपके (बंधे) हुए कर्मों को शीघ्र ही अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में जला कर नष्ट कर देती है। इस तरह विचार करना ''अग्निधारणा'' कहलाती है।

आतम में प्रकटें जहाँ, गुण-अनन्त-अभिराम।
सिद्ध बने परमात्मा, सिद्ध हुए सब-काम॥ 84॥

अष्ट-कर्म नष्ट होते ही आत्मा केवलज्ञानी, शुद्ध, बुद्ध परमवीतरागी सिद्ध-परमात्मा बन जग में शोभा पाती है और उनकी आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त शक्ति आदि अनन्त शुभ-गुण प्रकट हो जाते हैं तथा वे सिद्ध-परमेष्ठी सदा के लिए कृतकृत्य हो जाते हैं।

घृत जैसे महके; पुनः, नहीं दुग्ध में आय।
भव में न अवतार ले, शिव में आतम भाय॥ 85॥

दुग्ध से प्रकट हुआ घृत जैसे पुनः दुग्ध रूप अवस्था में लौटकर नहीं जाता हुआ अपनी सुगन्ध को चहुँ ओर फैलाता है वैसे ही संसार-समुद्र से पार हुए सिद्ध-परमात्मा अनंतकाल में कभी भी मोक्षपद या सिद्ध-लोक से लौट कर संसार में पुनर्जन्म नहीं धारण करते, बल्कि सदा वे लोक-शिखर पर ही सुशोभित होते हैं।

सकल-ज्ञेय-ज्ञायक बने, झलकें सभी पदार्थ।
दर्पण-वत् आदर्श हैं, गुण-अनन्त-परमार्थ॥ 86॥

व्यवहार-दृष्टि से विश्व के सभी पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ तथा निश्चय-दृष्टि से दर्पणवत् जिनकी आत्मा में विश्व के सभी पदार्थ युगपत् झलकने लग जाते हैं और वे आत्मज्ञ-सिद्ध-परमात्मा अपने अनन्त-गुणों के आनंद में लीन रहते हैं।

(वायु और जलधारणा)

कर्मराख को तीव्र वह, मारुत करती साफ।
मेघों के उस नीर से, थल भी धुलता आप॥ 87॥

ध्यानाग्नि से भस्म हुए अष्ट-कर्मों की राख को तीव्र तूफानी गतिमान वायु उड़ाकर दूर कर देती है और मूसलाधार वर्षात् के द्वारा मेघों का जल राख के बने दाग को धोकर साफ कर डालता है ऐसा शुभ-चिन्तवन करना क्रमशः ''वायु'' और ''जलधारणा'' कहलाती है।

(तत्त्वधारणा)

यह शुद्धात्म अजीव से, भिन्न-सिद्ध है जीव।
परम-तत्त्व दर्शन तथा, ज्ञान सहित मम-जीव॥ 88॥

यह शुद्धात्मा शरीर, वस्त्र, अलंकार आदिक से भिन्न दर्शन तथा ज्ञान सहित परमतत्त्व स्वरूप है ऐसा चिन्तवन करना ''तत्त्वधारणा'' कहलाती है।

(रूपस्थध्यान)

आत्म-सर्व-चिद्रूप है, ज्ञान-मयी सु-विचार।
ध्यान रहा रूपस्थ यह, यतिओं को स्वीकार॥ 89॥

निज-आत्मा सम्पूर्ण चैतन्य-ज्ञान-मय है ऐसा विचार करना रूपस्थ-ध्यान मुनियों द्वारा मान्य कहा गया है।

अनन्त-ज्ञान भण्डार-मय, आतम-गुण चिद्रूप।
कर्म-मेघ हटते जहाँ, बने केवली रूप॥ 90॥

अनन्त ज्ञानादिक का खजाना रूप आत्मा चैतन्य-गुणों के उदय और कर्म रूपी मेघ-पटलों के हटने पर, कैवल्य-अवस्था का स्वामी बन जगत् में भासित-शोभित होता है। ऐसा विचार करना ''रूपस्थ-ध्यान'' कहलाता है।

(रूपातीतध्यान)

निष्कलंक-त्रयकाल-निज, शुद्ध-निरंजन एक।
चिन्तन रूपातीत है, ध्यान करें मुनि नेक॥ 91॥

कर्म-कलंक से रहित त्रिकालों में अपनी आत्मा शुद्ध-निरंजन अकेली होती है ऐसा चिन्तवन कर मुनिराज श्रेष्ठ रूपातीत-ध्यान करते हैं।

चिदानन्द-मय पूर्ण यह, शुद्धातम गुण-खान।
अमूर्त-नित्य-परमात्मा, ध्यावें सिद्ध-समान॥ 92॥

अपनी शुद्धात्मा चैतन्य के आनंदमयी गुणों की खजाना है। अमूर्त शाश्वत-परमात्मा सिद्धों के समान है। ऐसा मुनि लोग ध्यान करते हैं, इसी का विचार करना चाहिए।

(धर्मध्यान के स्वामी)

चौथे उस गुणथान से, सप्तम तक ये ध्यान।
ध्यान; विचय संस्थान यह, मुनिवर के पहचान॥ 93॥

असंयत-सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ-गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त-संयत नामक सातवें-गुणस्थान तक धर्मध्यान करने की योग्यता मानी गई है, लेकिन संस्थान-विचय धर्मध्यान केवल निर्ग्रंथ-दिगम्बर-आत्मध्यानी मुनियों को ही होना संभव है; ऐसा जानकर उसकी प्राप्ति का पूर्ण पुरुषार्थ करो।

(शुक्ल-ध्यान का स्वरूप)

(पृथक्त्ववितर्कवीचार)

अर्थ, व्यंजन, योग का, परिवर्तन जब होय।
श्रुत में ऊहापोह हो, शुक्ल-ध्यान-अथ होय॥ 94॥

पृथक्त्व अर्थात् भेद रूप द्रव्य, वितर्क अर्थात् श्रुत (ज्ञान) के साथ रहना, और वीचार अर्थात् अर्थ (पदार्थ), व्यंजन (पर्याय) एवं योग (मन-वचन-काय) ऐसा इस प्रथम शुक्ल ध्यान का शाब्दिक अर्थ होता है। जब मुनिवर जीवाजीवादिक अनेक भेदों सहित द्रव्यों को मन, वचन और काय इन तीनों योगों के द्वारा ध्याते हैं तब पृथक्त्व होता है। मुनिवर का श्रुत-ज्ञान में (अंग सहित नवम पूर्व आदिक ज्ञान में) चिंतवन-मंथन चलता है तब वितर्क कहलाता है। इसी तरह एक अर्थ (पदार्थ) को छोड़कर भिन्न अर्थ का ध्यान करना और एक व्यंजन (पर्याय) या द्रव्य की अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था का ध्यान करना तथाहि मन से चिन्तवन करके वचन से चिन्तवन करना; पुनः काययोग से चिन्तवन करना; इस तरह का परिवर्तन (संक्रमण) यह वीचार कहलाता है। इन अर्थ, व्यंजन और योगों के परिवर्तन से यह ध्यान तीन प्रकार रूप होता है। ऐसे ज्ञान (श्रुत) के विषय में चिंतवन-मंथन करते-करते योगी एकाग्रता से शुक्ल-ध्यान को ध्याते हैं।

(एकत्ववितर्क अविचार)

एक-योग में थिर रहे, श्रुत का मन्थन होय।
शुक्ल-ध्यान फिर दूसरा, केवलज्ञानी होय॥ 95॥

मन, वचन और काय में से किसी एक-योग के द्वारा मुनिवर जब षड् द्रव्यों में से किसी एक-द्रव्य का, नव-पदार्थों में से किसी एक-पदार्थ का और व्यंजन या अर्थ-पर्यायों में से किसी

एक-पर्याय का श्रुतज्ञान के चिंतन-मंथन के साथ जो ध्यान करते हैं उसे एकत्व-वितर्क अवीचार ध्यान कहा जाता है। इस ध्यान में अर्थ, व्यंजन और योगों का परिवर्तन नहीं होता अर्थात् बड़ी स्थिरता होती है। इस ध्यान की यह विशेषता है कि इस ध्यान के अन्तर्मुहूर्त्त काल में मुनिवर अपनी आत्मा में अनादिकाल से बंधे कर्म जो कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों का क्षय (नाश) करके केवलज्ञान की प्राप्ति करके अरिहंत-भगवान के पद को प्राप्त कर लेते हैं।

(सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती)

काययोग बस जब रहे, ना प्रतिपाती होय।
केवलज्ञानी-आत्मा, परमातम-सम जोय॥ 96॥

केवली-भगवान के जीवन के अंत में होने वाला परमात्मा की उत्कृष्ट-समता देने वाला ध्यान जिसमें काययोग की क्रिया भी सूक्ष्म हो जाती है वह सूक्ष्म-क्रिया-अप्रतिपाती (अप्रतिपाती अर्थात् निचली अवस्था में लौटकर नहीं आने देने वाला) ध्यान कहलाता है। यह अवितर्क और अविचार है अर्थात् श्रुत के अवलम्बन से रहित है अतः अवितर्क है और इसमें अर्थ, व्यंजन तथा योगों का संक्रमण नहीं है अतः अविचार है।

(व्युपरतक्रियानिवृत्ति)

बने अयोगी आतमा, सर्व-निवृत्ति होय।
सर्वकर्म बिनसें तभी, क्षण में मुक्ति होय॥ 97॥

सम्पूर्ण योगों या काययोग का भी निरोध हो जाने से जो अयोग-केवली-परमात्मा का ध्यान है वह **व्युपरतक्रियानिवृत्ति** या **अनिवृत्ति-निरुद्ध-योग** अथवा **समुच्छिन्न क्रिया** नामक शुक्लध्यान कहलाता है। यह ध्यान सभी ध्यानों में अन्तिम और उत्कृष्ट होने से अनुत्तर है, परिपूर्णतया स्वच्छ-उज्ज्वल होने से शुक्ल है, यह मणि के दीप की शिखा के समान होने से पूर्णतया अविचल है। तथाहि तृतीय शुक्ल-ध्यान की भांति अवितर्क, अवीचार भी है। ऐसे उत्कृष्ट-ध्यान के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर आत्मा क्षणमात्र में मोक्ष-सुख को प्राप्त कर लेती है।

(चौदहवें गुणस्थान का काल)

गणधर के स्वर-पंच-लघु, उच्चारण में काल।
जितना, उतना है इसी, गुणस्थान का काल॥ 98॥

गणधर-परमेष्ठी के लिए 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', 'ऌ' इन पंच ह्रस्व-स्वरों के उच्चारण में जितना अल्पकाल (जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त) लगता है, उतना ही इस चौदहवें-गुणस्थान का काल होता है जिसमें अयोग-केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

(शुक्लध्यान के गुणस्थान)

अष्टम-गुणस्थान से, प्रथम-शुक्ल हो ध्यान।
बारहवें-गुणथान में, होय दूसरा जान॥ 99॥

अपूर्वकरण नामक आठवें-गुणस्थान से पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है। क्षीणकषाय नामक बारहवें-गुणस्थान में एकत्ववितर्क-अवीचार नामक दूसरा

शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है।

तेरहवें गुणथान में, तीजा-शुक्ल सु-ध्यान।
चौदह में चौथा-शुकल, फिर हो मोक्ष-महान॥ 100॥

सयोग-केवली नामक तेरहवें-गुणस्थान में सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाती नामक तृतीय शुक्ल-ध्यान कहा जाता है और अयोग-केवली नामक चौदहवें -गुणस्थान में व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्ल-ध्यान कहा जाता है; इस अन्तिम शुक्ल-ध्यान के उपरान्त आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

(अन्तिम मंगल)

मुनिवर का जीवन सदा, ज्ञान, ध्यान में लीन।
***आर्जव*-मय उपयोग से, बनें स्वयं-स्वाधीन॥ 101॥**

मुनिवर का जीवन हमेशा ज्ञान, ध्यानादि तपों में लीन रहता है। आर्जव अर्थात् सरलता-मय भाव से वे निज-आत्मा में स्वाधीन-स्वाश्रित सुखी बने रहते हैं।

***सागर* वह अध्यात्म का, जिनके अन्दर पूर।**
***रचित* शुद्ध-निज-आत्म में, भव-वांछा से दूर॥ 102॥**

जिन मुनिवर के हृदय में अध्यात्म का सागर लबालब भरा रहता है और वे मुनिवर सांसारिक-इच्छाओं से विलग रहते हुए अपनी शुद्धात्मा में लीन रहते हैं।

***सम्यक्*-निज-उपयोग हो, शुभ अरु शुद्ध-महान।**
***ध्यान* जगे वह शुक्ल जब, मिलता केवलज्ञान॥ 103॥**

समीचीन (सम्यग्दृष्टि) आत्मा के धार्मिक-क्रिया रूप शुभोपयोग के द्वारा मुनियों को प्राप्त होने वाले महान शुद्धोपयोग की जब प्राप्ति होती है और जब शुक्लध्यान उत्पन्न होता है तब उसके फलस्वरूप उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है।

शतक -वर्ष नहिं चाहिए, अन्तर्मुहूर्त्त मात्र।
पूर्ण-लीन निश्चल जहाँ, मुनिवर मोक्ष सु-पात्र॥ 104॥

संसार या कर्मों से मुक्ति पाने के लिए शताधिक आदि वर्षों का ही होना आवश्यक नहीं बल्कि अन्तर्मुहूर्त्त काल मात्र में ही मुनिवर अगर पूर्ण निश्चल-एकाग्र-वृत्ति से अपनी आत्मा में लीन हो जाते हैं तो उन्हें सम्पूर्ण कर्मों से छुटकारा पाने रूप मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

अष्टापद व सम्मेदगिरि, चम्पापुर, गिरनार।
पावापुर को ध्याय जो, शीघ्र करे भव-पार॥ 105॥

भ. आदिनाथ तीर्थंकर एवं अनेक मुनीश्वरों का मोक्षस्थान अष्टापद-कैलाश पर्वत, भ. अजितनाथ आदि वर्तमान चौबीसी के बीस तीर्थंकरों एवं अनन्तानन्त मुनीश्वरों का मोक्षस्थान सम्मेदशिखर, भ. वासुपूज्य तीर्थंकर का मोक्षस्थान चम्पापुर (मन्दारगिरि), भ. नेमिनाथ तीर्थंकर एवं अनेक मुनीश्वरों का मोक्षस्थान गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि) और अन्तिम तीर्थंकर भ. महावीर का मोक्षस्थान पावापुरी है उनका जो ध्यान करता है वह भव्यात्मा शीघ्र ही संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

तीन-गुप्ति में लीन हो, मन-वच-तन को रोक।
करें ध्यान शिव-मोक्ष-पा, जन्म, मृत्यु ना शोक॥ 106॥

पंच-मिथ्यात्व, पंच-पाप एवं पंच-इन्द्रिय के विषयों की ओर से मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को रोककर तीन-गुप्तियों के द्वारा आत्मलीनता पूर्वक सम्यक्-ध्यान करने से जहाँ जन्म, मृत्यु और शोक नहीं ऐसा मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रशस्ति

सुप्रतिष्ठित-केवली, मोक्ष गये वह थान।
गोपगिरि पावनधरा, जग से पूज्य-महान॥ 107॥

ग्वालियर नगर के निकट जिस पर्वत से सुप्रतिष्ठित-केवली मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त हुए ऐसा स्थान गोपगिरि (गोपाचल) जगत् में महान पूज्य और पावन-धरा रूप माना गया है।

गोपाचल यह ग्वालियर, सिद्धांचल जहँ तीर्थ।
वृषभांचल, त्रिशलागिरि, नेमिगिरि भी तीर्थ॥ 108॥

ग्वालियर नगर के जिस पवित्र पर्वत पर पूर्वदिशा की गुफाओं में जहाँ ब्यालीस फीट ऊँचे पार्श्वनाथ-भगवान विराजमान हैं ऐसा गोपाचल-तीर्थ स्थित है। दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच जहाँ भगवान महावीर के पंच कल्याणक के दृश्य व वीतराग-प्रतिमाएँ तथा त्रिशलामाता की सोलह स्वप्नों को दर्शाने वाली प्रतिमा बनी हुई है ऐसी त्रिशलागिरि नाम से प्रसिद्ध-स्थल है। पश्चिम-दिशा में जहाँ चौबीस फीट ऊँचे नमिनाथ-भगवान आदि की जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं और इसी तरह ईशान-दिशा में जहाँ नेमिनाथ भगवान आदि की प्रतिमाएँ बनाई गयी थीं

ऐसा नेमिगिरि–तीर्थ स्थित है तथाहि उरवाही दरवाजे से प्रवेशकर ऊपर की ओर बढ़ते हुए पहाड़ के हृदय–सम बीचों–बीच चौरासी फीट ऊँचे भगवान आदिनाथ (वृषभदेव) की मूर्ति स्थित है।

वर्धमान–मंदिर किला, सहित सु–पर्वत नाथ।
ग्वालियर में साठ जिन,–मंदिर नमते माथ॥ 109॥

सुप्रतिष्ठित केवली के सिद्धक्षेत्र गोपगिरि (गोपाचल) पर बने प्राचीन वर्धमान जिनालय के चारों ओर बने अर्वाचीन किले के परिसर में गुफाओं और मंदिरों में विराजमान व कुछ प्रकृति आदि से छिन्न–भिन्न; पाषाण से निर्मित पंद्रह हजार दिगम्बर–प्रतिमाओं के साथ पवित्रपर्वत और ग्वालियर शहर में स्थित स्वर्ण–मंदिर आदि साठ दिगम्बर जैन मंदिरों को हम वीतराग–भाव से सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं।

वर्ष वीर–निर्वाण का, पच्चीस सौ चौंतीस।
'सम्यक्–ध्यान शतक' लिखा, काव्य बनावे ईश॥ 110॥

वीर–निर्वाण संवत् पच्चीस सौ चौंतीस के वर्षायोग में यह ''सम्यक्–ध्यान–शतक'' नामक काव्य (समीचीन–ध्यान–साधना हेतु) लिखा गया; जो काव्य ध्यान–कर्ता को सिद्ध पद प्राप्त करावे।

मंदिर नया–बजार में, पार्श्व–प्रभो हैं नेक।
वर्षायोग में काव्य यह, रचा सु–पूर्ण विवेक॥ 111॥

ग्वालियर नगर के नया–बाजार स्थित मंदिर में विराजमान पार्श्वनाथ–भगवान की मनोज्ञ–प्रतिमा के चरणों में बैठकर पावन–

वर्षायोग में आत्म-ध्यान की प्रसिद्धि के लिए ज्ञान-ध्यान रूप विवेक को धारण करते हुए यह काव्य रचित किया गया।

पार्श्व-प्रभो की शरण वा, विद्या-गुरु आशीष।
पूर्ण हुआ यह काव्य शुभ, पढ़ें बनें शिव-ईश॥ 112॥

भगवान पार्श्वनाथ की शरण एवं आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के आशीष से यह 'सम्यक्-ध्यान-शतक' शुभ-काव्य संपूर्ण हुआ, इस काव्य को सभी लोग (पुनः-पुनः) पढ़कर सिद्ध-पद को प्राप्त करें।

इक सौ तेरा पद्य हैं, 'ध्यान शतक' में पूर्ण।
ध्यान करें निज-एक सो, तेरा है सम्पूर्ण॥ 113॥

इस 'ध्यान-शतक' काव्य में एक सौ तेरह पद्य लिखे गये हैं और जो एक अर्थात् एकमात्र आत्मा ही तेरा है उस आत्मा का ध्यान करने से सम्पूर्णता की प्राप्ति या सम्पूर्ण-सुख रूप सिद्ध-पद की प्राप्ति हो जाती है।

❖❖❖❖❖

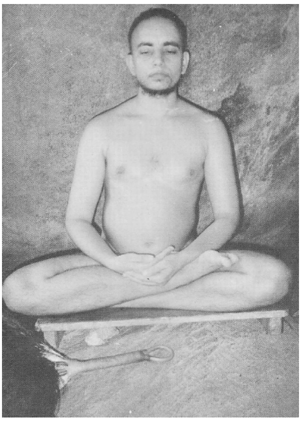

पृथ्वीधारणा

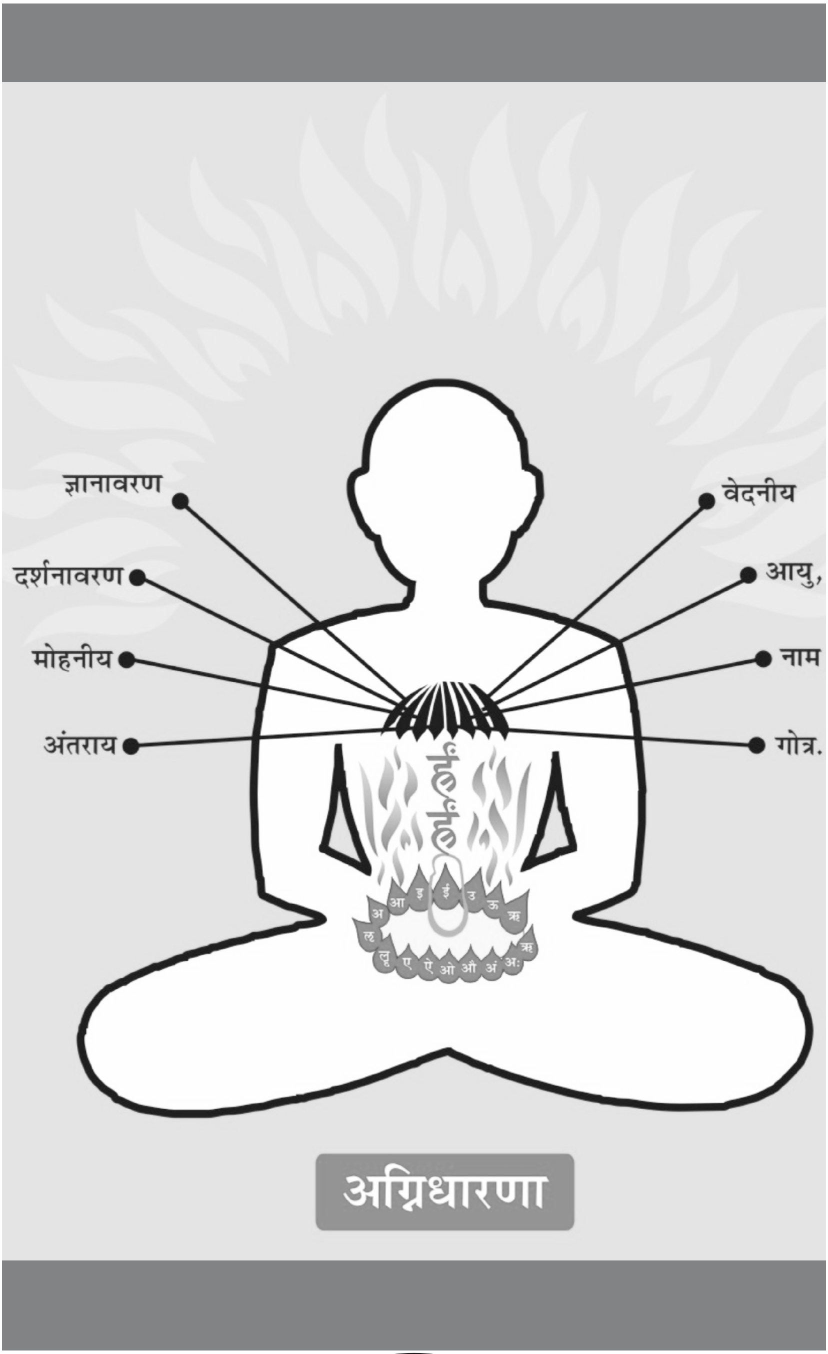

अग्निधारणा

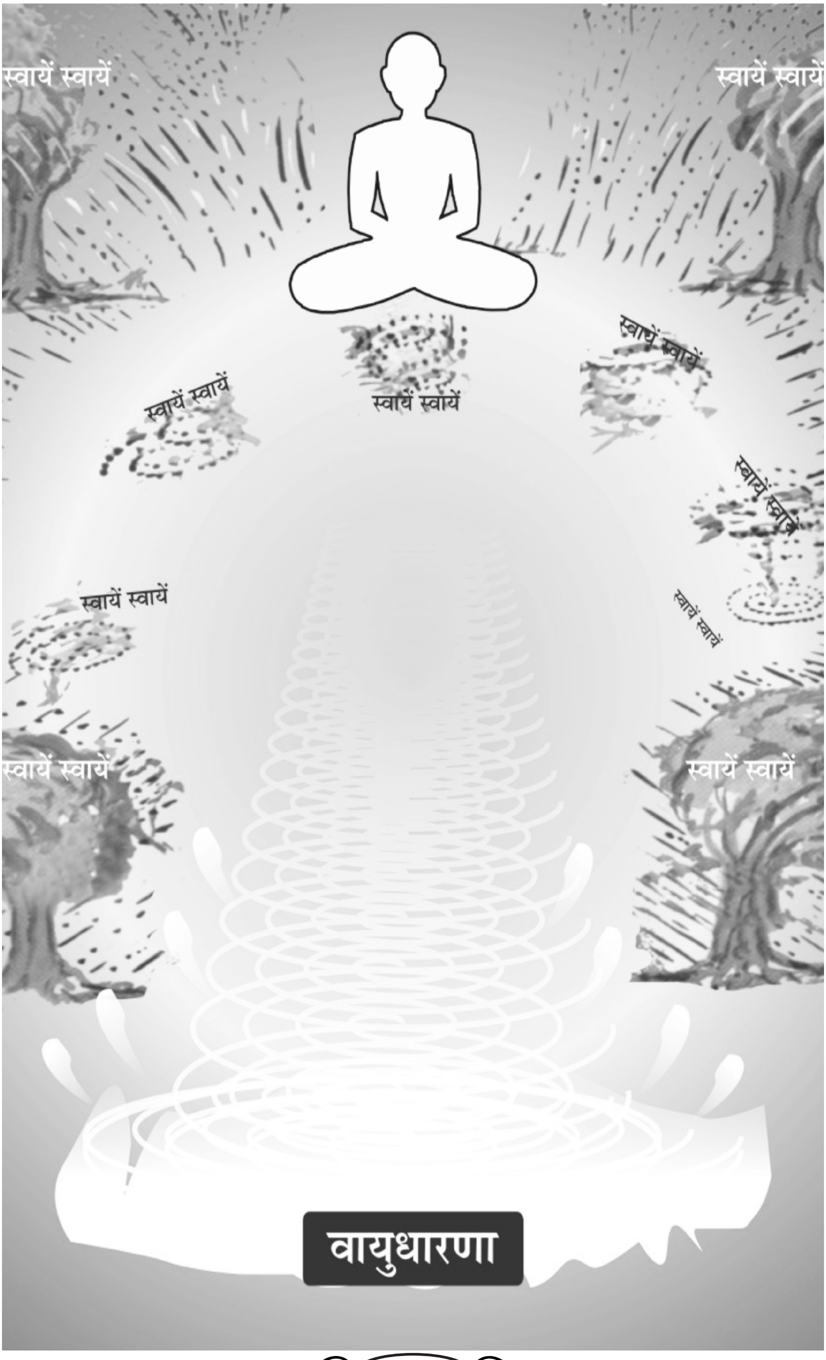
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
वायुधारणा

जलधारणा

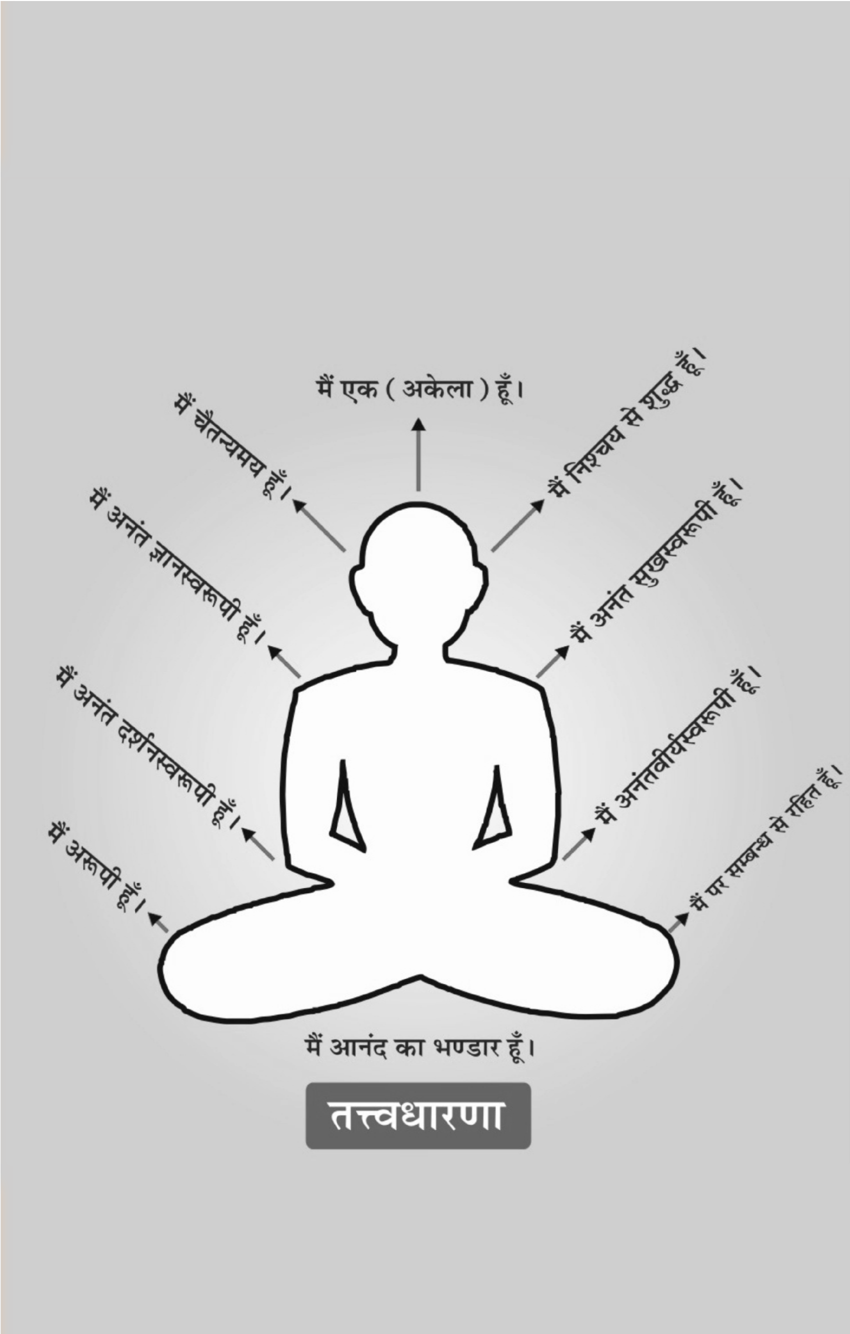
मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं अनंतवीर्यस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर सम्बन्ध से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।
तत्त्वधारणा

श्री अन्तादि शतक

(अंत और आदि शब्द पर विशिष्ट काव्य-रचना)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

श्री अन्तादि शतक

- मंगल का फल
- विदेह में सदा जैन
- जैनों का सदाचरण
- जैनों की सद्भावना
- कल्याण-परिचय
- ज्ञान से चारित्र महान
- सम्यग्दर्शन से जीवन की शोभा
- मोक्ष में शाश्वत सुख
- वास्तविक आत्म-स्वरूप
- स्वयंकृत कर्मों का फल
- बहिरात्मा
- स्वभाव की प्राप्ति
- स्याद्वाद
- अनेकान्त
- नयों से वस्तु-तत्त्व
- लक्ष्य प्राप्ति
- पुण्य शुभरूप है।
- दयालु; देवों से भी आदरणीय
- व्रत धारण का फल
- तीर्थदर्शन का फल
- धर्म-पुरुषार्थ का फल
- अर्थ-पुरुषार्थ में न्यायशीलता
- स्वार्थी का काम-पुरुषार्थ विफल
- मोक्ष-पुरुषार्थ की सफलता
- शुभ सुकून में मंगल
- त्यागी के आभूषण
- नियत और अनियत
- पुरुषार्थ हो, प्रमाद नहीं
- सत्पात्र सेवा में पुण्य
- वीतरागी में लौकिक चाह नहीं
- वैरागी का पांच-पाप त्याग
- अशुभ और शुभध्यान
- वीतराग श्रद्धा से धर्मध्यान
- गुरु-आशीष से चारित्र प्राप्ति
- जवानी में दृढ़ चारित्र
- दस-धर्म
- विषय कषाय-विजय
- खादी-खाकी से सबक
- पश्चात्ताप व कर्म-कर्ज मुक्ति
- सल्लेखना है कृशीकरण
- आत्म-शुद्धि
- कर्म-नाश से मोक्ष-प्राप्ति
- मोक्ष में अलौकिक सुख
- सिद्ध; अक्षय मंगल पूज्य
- पावन लक्ष्य में सिद्धों का ध्यान
- जिनश्री पायें

मंगलाचरण

श्री परमेष्ठी, हैं शुभ मंगल।
नाम लेयँ सब होता मंगल।।1।।

★ ★ ★

मंगल श्री सद्ज्ञान है मंगल।
समवसरण-श्री मोक्ष हो मंगल।।2।।

(मंगल का फल व कामना)

मंगल-मय, जीवन की राह।
पूर्ण करे, शिव -मंजिल चाह ।।3।।

★ ★ ★

चाह हमारी, सिद्ध बनें हम।
प्रथम, भारती-सेवक हर दम।।4।।

(जैन; सद्-गुरु-सेवक)

दम टूटे न, निश-दिन रैन।
सुगुरु सेवा-रत हों जैन।।5।।

(युगादि में प्रथम व विदेह में सदा जैन)

जैन आद्य, तीर्थंकर बेन ।
रहें विदेह में सतत हि जैन।।6।।

(जैनों का सदाचरण)

जैन जगत् में, रहती चैन।
जिनेन्द्र पूजते, सदा हि जैन।।7।।

जैन-आचार बढ़ावे प्रेम।
रहें जगत् -प्रशंसित जैन।।8।।

(जैनों की सद्भावना)

जैन; जगत् का चाहें क्षेम।
बुरा कभी न चाहें जैन ।। 9।।

(जैनों की न्यायप्रियता)

जैन लेन-इंसाफ हि देन।
सदा अहिंसा पालें जैन ।।10।।

★★★

जैन- विधि , निःस्वार्थी देन।
जाने देश-विदेश हि जैन ।।11।।

★★★

जैन अमर हों -जिन -वच जान।
पूर्ण -विश्व में, नामी मान ।।12।।

(निरभिमानी का स्वाभाविक सम्मान)

मान-चाह न हो सम्मान।
लोक- रीति है,जन श्रुति जान।।13।।

(शाश्वत आत्म व कल्याण पर श्रद्धान)

जान आत्म जहँ जीव प्रधान।
धर्म करे,निश्चित कल्याण।।14।।

(कल्याण-परिचय)

कल्याण हि शुभ- मोक्ष महान।
अनंत-सौख्य का, होता पान।।15।।

★★★

पान निजी सुख, दुःख की हान।
अनंत दर्श वा, जहाँ हो ज्ञान ।।16।।

(ज्ञान से चारित्र महान)

ज्ञान अल्प पर, चरित प्रधान।
चरित जहाँ हो, गुण की खान।। 17।।

(सम्यग्दर्शन से जीवन-शोभा)

खान-मूल्य, समकित-सह आय।
चेतन हीरा, सबको भाय।। 18।।

(चेतन रस में, भव-भोग फीके)

भायें भोग न, धर्म सुहाय।
चेतन रस में,वह पग जाय।। 19।।

(वीतरागी को मोक्ष सुख)

जाय राग, तब श्रमण कहाय।
श्रमण अक्ष न, शिव सुख पाय।। 20।।

(मोक्ष में शाश्वत अनंत सुख)

पाय अनंत हि गुण-भंडार।
नश्वर-जग से होता पार ।। 21।।

★★★

पार जगत् से होता जीव।
सिद्ध बने हि सुखी-अतीव ।। 22।।

★★★

अतीव-शांति जहँ, शिव का थान।
अजर, अमर- पद है वह मान।। 23।।

(त्रिलोकी, त्रिलोक पूज्य सिद्धात्मा)

मान -देय वा, पूजे लोक।
पूर्ण- लोक का करे विलोक।। 24।।

(निश्चय से आत्म- स्वरूप)

विलोक वास्तविक आत्म- स्वरूप।

रहा अरस व, अशब्द, अरूप।। 25।।

★★★

अरूप चेतन- निश्चय होय।

आत्म नित्य वह, निज में खोय।। 26।।

(सिद्धों का संसार में अवतार नहीं)

खोय नहीं फिर, स्वयं स्वभाव।

घृत; फिर दुग्ध न आये भाव।। 27।।

(निश्चय से जीव-पुद्गल में भेद)

भाव -जीव का, पुद्गल न।

जड़ वह निश्चय जीव भी न।। 28।।

(स्वयं- कृत कर्मों का फल)

न हो कर्त्ता ,कोई किसी का।

करनी जैसी, फले उसीका।। 29।।

(सुख व दुःख पुण्य, पापाश्रित हैं)

उसीका हि दुःख, पापाश्रित है।

सुख भी उसका, पुण्याश्रित है।। 30।।

(निश्चय से स्वात्मा के अलावा सब पर हैं)

है ना आश्रित कोई किसी पर।

निश्चित; निज से, सब ही हैं पर।। 31।।

(पर को स्व माने वह बहिरात्मा)

पर में भटके, बहिरातम जो।
रमे ही निज में अन्तरातम वो।। 32।।

★★★

वो परमातम–हैं कहलाते।
घाति, अघाति कर्म जलाते।। 33।।

(विभाव के अभाव में स्वभाव की प्राप्ति)

जलाते अपने,जो दुर्भाव।
निज में पाते , निज के भाव।। 34।।

(पर गौण, निज मुख्य में स्याद्वाद)

भाव करे जो,निज के याद।
मुख्य गौणता,–में स्याद्वाद।। 35।।

(किसी गुण–धर्म को नहीं नकारना अनेकांत)

स्याद्वाद; गुण मुख्य गौण हों।
धर्म अनेकों, अनेकांत हो।। 36।।

(वस्तु के एक पक्ष में हठ करना एकांत –मिथ्यात्व)

हो एकांत अगर पक्ष जो।
मिथ्या–दृष्टि कहलाता वो।। 37।।

('भी' में अन्य पक्ष का अस्तित्व व अनेकांत)

वो होता जब 'भी' के भीतर।
अनेकांत से होता है तर ।। 38।।

(नयों में सभी पक्षों के अंश –अंश का कथन)

तर हों धर्मों से पूरक नय ।
अंश–अंश के ग्राहक हों नय।। 39।।

(नयों से वस्तु तत्त्व की गहराई व कल्याण)

नय से जीवन नया बनाओ।
गहरे जाकर भी तर जाओ।। 40।।

(लक्ष्य प्राप्ति में त्याग, संयम चाहिए)

जाओ अपने, लक्ष्य को पाओ ।
त्याग साथ जब, संयम पाओ।। 41।।

(संयम के सह सम्यग्दर्शन आवश्यक है)

पाओ समदर्शन-सह संयम।
समदर्शन बिन, मिथ्या हो यम।। 42।।

(शोभनीय-आचार)

यम,नियम सब, निरतिचार हों।
भाते सबको, सद्-विचार हों ।। 43।।

(पुण्य शुभ रूप है)

हों क्षय शीघ्र ही, अशुभ-पाप जो।
पुण्य-बंध हो,रहता शुभ जो।।44।।

(दया-धर्मी; देवों से भी आदरणीय)

जो भी धर्मी, दया बढ़ाये ।
देवों से भी, आदर पाये।।45।।

(व्रत-धारण का फल व प्रभाव)

पाये व्रत से,स्वर्ग संपदा।
सुर-गण सेवक, आये न विपदा।।46।।

(विदेह- क्षेत्र दर्शन का फल)

विपदा न हो, विदेह में जा ।

तीर्थ लखे, मिटता विधि–कर्जा ।।47।।

★ ★ ★

कर्जा मिटे वह, क्षेत्र है पावन।

पूज्य- पुरुष का, उत्तम–जीवन।।48।।

(धर्म–पुरुषार्थ की प्राथमिकता)

जीवन उत्तम, पुरुषार्थी बन।

होता, प्रथम जो धर्मार्थी बन।।49।।

(अर्थ–पुरुषार्थ में न्यायशीलता)

बन जाये गर, धन का अर्थी।

न्याय न भूले, न बन स्वार्थी।।50।।

(स्वार्थी का काम पुरुषार्थ विफल)

स्वार्थी काम,न होय सफल वह।

हो संतति–व्यवहार विफल वह।।51।।

(परिग्रह के त्याग में मोक्ष–पुरुषार्थ सफल)

वह धन वैभव, राज्य भी तजता।

हो सन्यासी, मोक्ष भी भजता।।52।।

(पुण्य और कर्म–निर्जरा में सुख)

भजता जिनवर, पुण्य कमाये।

कर्म–निर्जरा कर, सुख पाये ।।53।।

(शुभ–कर्मों से गुण का समुद्र भरें)

पाये प्रभु –सम, गुण का सागर।

बूंद–बूंद से भरती गागर।।54।।

(मंगलकारक में शुभ-सुकून)

गागर; मंगल-कारक जानो ।
शुभ-सुकून, उपकारक मानो ।।55।।

(संसार- मार्ग में दुख, मोक्ष- मार्ग में सुख)

मानो मोक्ष का मार्ग सुखद है।
भव-कारक भव-मार्ग दुखद है।।56।।

(त्यागी-पुरुषार्थी के गुण हैं आभूषण)

है पुरुषार्थी, भोग जो तजता।
संयम, व्रत के, गुण से सजता।।57।।

(भोगी, निकम्मा काल के भरोसे रहता है)

सजता न जो, व्रत पालन कर।
भोगी; नियत में निज-मानस कर।।58।।

(अनियत मान पुरुषार्थ करो)

कर पुरुषार्थ, कार्य जभी हो।
अनियत कहना, उसे तभी हो।।59।।

(पुरुषार्थ कर कार्य नहीं तब भाग्य प्रमुख)

हो पुरुषार्थी, कार्य न हो जब।
नियत-भाग्य वह, कहना हो तब।।60।।

(प्रमाद-तज नित पुरुषार्थ करें)

तब निश-दिन, पुरुषार्थ न हो कम।
तज प्रमाद, कर्त्तव्य करें दम।।61।।

(सत्पात्र दान व सेवा पुण्यकारक है)

दम-भर दान, सुपात्री सेवा।
मिलती सुखकर, पुण्य की मेवा।।62।।

(लौकिक चाह में वीतराग पूजा न भूलें)

मेवा में न, फूले सेवक।
वीतराग का, नित हो पूजक।।63।।

(व्रत, शील निर्दोष पालें)

पूजक शीलाचारी होवे।
व्रत;निर्दोषी पालक होवे।।64।।

(सजग हो, चतुराहार-तज उपवास करें)

होवे सजग ही,अनशन करता।
चतुराहार सभी है तजता।।65।।

(वैरागी पंच पाप छोड़े)

तजता अघ को, वह वैरागी।
विषयों का वह, ना हो रागी।।66।।

(राग में बंध, ध्यान में संवर)

रागी कर्मों से बंधता है।
बंध-रहित ध्यानी होता है।।67।।

(अशुभ-ध्यान तज शुभ-ध्यान हों)

है ध्यानी, न आर्त -रौद्र हों ।
शुक्ल नहीं तो धर्म ध्यान हों ।68।।

(वीतराग की श्रद्धा से धर्म-ध्यान शुरु)

हों धर्म वे ध्यान शुरु तब।
उर होवें देव, शास्त्र, गुरु जब।।69।।

(निर्ग्रंथ-गुरु आशीष से चारित्र प्राप्ति)

जब आशीष, गुरु का मिलता।
चरित्र सरोवर-, का दल खिलता।।70।।

(जवानी का चारित्र बूढ़ेपन तक साथ)

खिलता चरित जवानी हो।
बूढ़े तक ना हानि हो।।71।।

(जवानी की शक्ति अधिक महत्वपूर्ण)

हो न व्रती,जब जवान होवे ।
शक्ति ना , जब बूढ़ा होवे।।72।।

(शक्ति-सह व्रत की भावना सच्चा योग)

होवें दांत, तब चने न मिलते।
चने मिले जब, दांत ही झड़ते ।।73।।

(क्षमा स्वभाव)

झड़ते कठोर- वचन जो सहते।
क्षमा- स्वभावी ज्ञानी रहते।।74।।

(मृदुता पालन)

रहते कोमल, मृदुता पालें।
मान-अपमान में रुचि हि ना लें।।75।।

(सरल स्वभावी)

लें न रुचि वे जहाँ वंचना।
सरल-स्वभावी छल भी रंच न।।76।।

(विषय-अलोभी-अध्यात्म लीन)

ना लोभी विषयों के होते।
अध्यातम में निश-दिन खोते।। 77।।

(सत् वादी की न्यायीजनों में आत्मीयता)

खोते न वे सत्-वादी-पन।
न्यायी जन में रख अपनापन।। 78।।

(संयमीजनों का जीव-दया पालन)

अपना-पन रख जीव बचाते।
संयम-मय जीवन अपनाते।। 79।।

(तपस्वी के उपवासादि पवित्र-तप)

अपनाते हैं तप-मय जीवन।
उपवासादि करते पावन।। 80।।

(त्याग-धर्मी ज्ञान, ध्यान में लीन)

पावन, त्याग-मयी है साधक।
ज्ञान, ध्यान के, नित -आराधक।। 81।।

(आकिंचन्य-धर्मी आत्म-लवलीन)

आराधक हैं, निज-आतम के।
किञ्चित न संग शुद्धातम के।। 82।।

(ब्रह्मलीन की परिषहों में समता)

शुद्धातम के ध्यान में रहते।
ब्रह्मलीन मुनि, परिषह सहते।। 83।।

(सहनशीलता में कर्म -निर्जरा)

सहते बाधा, कर्म- भगावें।
भव के शत्रु, सभी हरावें।। 84।।

(विषय-कषाय-जयी, मौनी स्वात्म-हितैषी हैं)

हरावें विषय, कषाय वे नित ही।
मित बोलें निज,करते हितही।।85।।

(जग- हितकारक को जगत् का स्नेह मिले)

हितही कर मुनि, मित्र बनाते।
पूर्ण- जगत् का, नेह जो पाते।।86।।

(गृहस्थ व्रती की पोशाक सादी होती है)

पाते गृही–पद, भूषा खादी।
नेता भी वह, पहने खादी ।।87।।

(न्याय के साथ खादी व खाकी पोशाक की शोभा)

खादी पहने हो, या खाकी।
न्याय चले तो, कर्ज न बाकी।।88।।

(अन्याय में खाकी, खादी में भी बर्बादी)

बाकी कर्म–कर्ज; बर्बादी।
खाकी हो या, फिर वह खादी।।89।।

(दया बिना खादी शोभनीय नहीं)

खादी मोटा, है पहनावा।
दया–धर्म बिन, हो पछतावा।।90।।

(पश्चात्ताप व दंड से जीवन की शुद्धि)

पछतावा से शिक्षा पावे ।
कर्ज–चुका, भव–सौम्य बनावे।।91।।

(संयमित जीवन से पवित्रता हासिल)

बनावें अपना, संयमित–जीवन।
व्रत, चारित पा,भव हो पावन।।92।।

(सल्लेखना में कषाय व काया का कृशीकरण)

पावन हो भव,सन्यासी बन ।
कृश हो कषाय, व व्रतधारी तन।। 93।।

(तन विरागी की आत्म-शुद्धि)

तन-सह राग,सूखता जानो।
बढ़े विशुद्धि, निज-शुद्धि मानो।। 94।।

(शुद्धात्मा का ध्यानी कर्म जलाता है)

मानो शुद्धातम ध्यानी वह।
कर्म-जलाता, नित ध्यानी जहँ ।। 95।।

(कर्मनाश से मोक्ष की प्राप्ति)

जहँ ध्यानी जब कर्म नशाता।
भव्य सुदृष्टि वह, सद्गति पाता।। 96।।

(मोक्ष में अलौकिक परमोत्तम -सुख)

पाता सौख्य,अलौकिक उत्तम।
गुण-गण पाता, है परमोत्तम।। 97।।

(सिद्ध; अक्षय मंगल पूज्य हैं)

परमोत्तम जिन-सिद्ध जहाँ हैं।
अक्षय मंगल, पूज्य महा हैं।। 98।।

(पावन-लक्ष्य मोक्ष हेतु जिन, सिद्धों का ध्यान)

हैं जिन, ध्यान-लक्ष्य में पावन।
जिनसे उन्नत होता जीवन।। 99।।

(सरलता से आनंदमयी मोक्ष- लक्ष्मी को पायें)

जीवन-स्वाद बढ़ाये मिश्री।
‘**आर्जव**’ बन भवि, पाये जिनश्री।। 100।।

प्रशस्ति

श्री अंतादि यह शतक, लिखी सूक्ति मय जान।
आत्म- विशुद्धि काज यह, नित्य पढ़ें धीमान।। 101।।

★★★

सम्मेदाचल के निकट, रहा ईसरी जान।
जहाँ लिया संकल्प यह,कृति का उत्तम मान।। 102।।

★★★

खनियांधाना में हुई, कृति है पूर्ण महान।
विद्यासागर- सम बने, '**आर्जवता**' की खान।। 103।।

★★★

पच्चीस सौ पचासवाँ ,वीर प्रभु- निर्वाण।
श्री अंतादि यह शतक,-पूर्ण करे कल्याण।। 104।।

★★★

गुरु-गुण-महिमा-काव्य

(गुरु-गुणगान की आलौकिक रचना)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

गुरु-गुण-महिमा-काव्य

- प्रभु-मंगल
- गुरु-मंगल
- जिनवाणी-मंगल
- अहिंसा व्रत
- सत्य व्रत
- अचौर्य व्रत
- ब्रह्मचर्य व्रत
- अपरिग्रह व्रत
- इर्या समिति
- भाषा समिति
- एषणा समिति
- आदान निक्षेपण समिति
- प्रतिष्ठापन समिति
- स्पर्शनेंद्रिय विजय
- रसनेन्द्रिय विजय
- घ्राणेन्द्रिय विजय
- चक्षुरेन्द्रिय विजय
- कर्णेन्द्रिय विजय
- केशलोंच
- समता
- स्तुति
- वंदना
- प्रत्याख्यान
- प्रतिक्रमण
- कायोत्सर्ग
- नग्नत्व
- अस्नान
- भूशयन
- अदन्तधावन
- स्थिति भोजन
- एक भुक्ति
- स्वाध्याय
- अष्ट अंग-सह सम्यग्दर्शन
- बारह तप भावना
- मन शुद्धि से आत्म-विशुद्धि
- उत्तम क्षमा धर्म
- उत्तम मार्दव धर्म
- उत्तम आर्जव धर्म
- उत्तम शौच धर्म
- उत्तम सत्य धर्म
- उत्तम संयम धर्म
- उत्तम तप धर्म
- उत्तम त्याग धर्म
- उत्तम आकिंचन धर्म
- उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म
- उपवास, अवमौदर्य
- वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग
- विविक्त शय्यासन, कायक्लेश
- प्रायश्चित्त, विनय
- वैय्यावृत्त, स्वाध्याय
- व्युत्सर्ग, ध्यान
- मनोगुप्ति
- वचनगुप्ति
- कायगुप्ति
- गुरु महिमा

मंगलाचरण-प्रभु मंगल

गुरु-उपासित वीतराग हैं।
नहीं उपासित कदा सराग हैं ॥ 1 ॥

(गुरु मंगल)

निर्ग्रन्थों की करें उपासना।
ग्रन्थ रखें गुरु कदा पास ना ॥ 2 ॥

(जिनवाणी मंगल)

जिनवाणी को हृदय धारते।
वीतराग-गुरु भजें शारदे ॥ 3 ॥

★ ★ ★

न धारें श्रृंगार हि गुरुवर।
न पूजें श्रृंगारी गुरुवर ॥ 4 ॥

(अहिंसा व्रत)

जीव-मात्र पर करुणा धारें।
त्रस, थावर गुरु हिंसा टारें ॥ 5 ॥

(सत्य व्रत)

नहीं असत्-वच बोलें गुरुवर।
हित-मित-प्रिय ही बोलें गुरुवर ॥ 6 ॥

(अचौर्य व्रत)

बिना दिये कुछ न लें मुनिवर।
योग्य-वस्तु दें फिर लें गुरुवर ॥ 7 ॥

(ब्रह्मचर्य व्रत)

वनिता-राग से परे हों मुनिवर।
आत्म-ब्रह्म में रमते गुरुवर ॥ 8 ॥

(अपरिग्रह व्रत)

तिल-तुष-मात्र न परिग्रह रखते।
उपकरण मात्र ही गुरुवर रखते ॥ 9 ॥

(ईर्या समिति)

देख-भालकर गुरुवर चलते।
ईर्या-समिति पालन करते ॥ 10 ॥

(भाषा समिति)

आगम-रूपी-वच गुरु बोलें।
भाषा-समिति में वच तौलें ॥ 11 ॥

(एषणा समिति)

दोष हटा, अन्तराय पालते।
समिति एषणा गुरु सम्हालते ॥ 12 ॥

(आदान निक्षेपण समिति)

गहें, रखें तो जीव-बचाते।
मयूर-पिच्छि-सह गुरु सुहाते ॥ 13 ॥

(उत्सर्ग-प्रतिष्ठापन समिति)

लघु दीर्घ शंकादिक गुरु जब।
परिमार्जन भू करते गुरु तब ॥ 14 ॥

(स्पर्शनेंद्रिय विजय)

न स्पर्श में राग करें गुरु।
कठोरादिक स्पर्श सहें गुरु ॥ 15 ॥

(रसनेन्द्रिय विजय)

रसना हेतु रस में राग ना।
गुरु रसना-जय, रहे काम ना ॥ 16 ॥

(घ्राणेन्द्रिय विजय)

सदा सुगंधादिक में गुरु को।
राग-द्वेष न होता गुरु को ॥ 17 ॥

(चक्षुरेन्द्रिय विजय)

जो भी दिखता राग-द्वेष ना।
साम्य गुरु को कभी क्लेश ना ॥ 18 ॥

(कर्णेन्द्रिय विजय)

रहे प्रशंसा या हो निंदा।
न फूलें गुरु, न शर्मिन्दा ॥ 19

(केशलोंच)

द्वि, त्रि, चतु-मास में गुरुवर।
केश-उखाड़ें, सम-धर गुरुवर ॥ 20 ॥

(समता)

करें त्रिकाल हि गुरु सामायिक।
सुसौम्य मुद्रा हो सम-दायक ॥ 21 ॥

(स्तुति)

चौबीसी-जिनवर गुरु भजते।
सद्गुण-गाकर, गुण से सजते ॥ 22 ॥

(वंदना)

एक–तीर्थ–जिन की वंदन हो।
जहाँ सुगुरु–पद, भू–चंदन हो॥ 23॥

(प्रतिक्रमण)

दोष–हटाने प्रतिक्रम करते।
गुरु; पापों के मल को हरते॥ 24॥

(प्रत्याख्यान)

त्याग करें गुरु, प्रत्याख्यानी।
रहें सुरक्षित, हो ना हानि॥ 25॥

(कायोत्सर्ग)

काया की ममता गुरु त्यागें।
आत्म–ध्यान में चित् को पागें॥ 26॥

(नग्नत्व)

न लें वस्त्र, अचेलक–मुनिवर।
परम–दिगम्बर रहते गुरुवर॥ 27॥

(अस्नान)

तन से निस्पृह रहते गुरुवर।
न स्नान हि करते मुनिवर॥ 28॥

(भू-शयन)

भूमि, पाटे पर गुरु सोते।
मृदु–स्पर्श से निस्पृह होते॥ 29॥

(अदन्तधावन)

नहीं दन्त चमकाते मुनिवर।
अदन्त-धावन पालें गुरुवर॥30 ॥

(स्थिति भोजन)

खड़े-खड़े चर्या गुरु करते।
बिना-सहारे, मौन भी धरते॥31॥

(एक भुक्ति)

एक-बार ही दिन में भोजन।
कर-पात्री-गुरु न लें भाजन॥32॥

(स्वाध्याय)

ज्ञानाराधन प्रतिदिन करते।
ज्ञानाचारी गुरुवर रहते॥33॥

(अष्ट अंग-सह सम्यग्दर्शन)

सम्यग्दर्शन; गुरु में होता।
अष्ट-अंग-सह पालन होता॥34॥

(बारह तप भावना)

बारह-तप वे पालें गुरुवर।
कर्म-निर्जरा करते गुरुवर॥35॥

(गुरु का आत्मबल)

सदा शक्ति उद्‌घाटित करते।
आत्मबली-गुरु, शिव-सुख वरते॥36॥

(चारित्र से मन शुद्धि)

बढ़े-चरित, गुरु-मनस्-शुद्धि हो।
ज्ञान, ध्यान, तप में विशुद्धि हो॥37॥

(उत्तम क्षमा धर्म)

नहीं क्रोध गुरु कभी धारते।
क्षमा-धर्म को नित्य-पालते ॥ 38 ॥

(उत्तम मार्दव धर्म)

मृदु-परिणामी, मान नहीं हो।
मार्दव-धर्मी-गुरु गुणी हों ॥ 39 ॥

(उत्तम आर्जव धर्म)

सरल-हृदय-गुरु, माया-त्यागी।
आर्जव-धर्मी सौम्य-विचारी ॥ 40 ॥

(उत्तम शौच धर्म)

नहीं लोभ गुरु मन में धारें।
शुचिता-पन, गुरु नित्य-सम्हारें ॥ 41 ॥

(उत्तम सत्य धर्म)

सज्जन-जन में हित-वच बोलें।
सत्य-कहें गुरु मिश्री घोलें ॥ 42 ॥

(उत्तम संयम धर्म)

इन्द्रिय-विषय व हिंसा त्यागें।
संयमी-गुरु से अवगुण भागें ॥ 43 ॥

(उत्तम तप धर्म)

कर्म-निर्जरा संवर करते।
परम-तपों को गुरुवर धरते ॥ 44 ॥

(उत्तम त्याग धर्म)

रत्नत्रय गुरु भवि को देते।
त्याग-धर्म से शिव पा लेते ॥ 45 ॥

(उत्तम आकिंचन धर्म)

किञ्चित-मात्र न धन हैं रखते।
आकिञ्चन-गुरु, सम-रस चखते ॥ 46 ॥

(उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म)

ब्रह्म-आत्म में लीन हों गुरुवर।
ब्रह्मचर्य से पूर्ण हों गुरुवर ॥ 47 ॥

(उपवास, अवमौदर्य)

अशन-त्याग, गुरु, अनशन करते।
कम-भोजन, ऊनोदर धरते ॥ 48 ॥

(वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग)

गुरु आकड़ी-चर्या पालें।
सीमित-रस या, रस ही न लें ॥ 49 ॥

(विविक्त शय्यासन, कायक्लेश)

गुरु अकेले, शयनासन में।
काय-कष्ट दें, क्लेश न मन में ॥ 50 ॥

(प्रायश्चित्त, विनय)

दोषों का प्रायश्चित्त गुरु करते।
वीतराग में विनीत रहते ॥ 51 ॥

(वैयावृत्त, स्वाध्याय)

गुणाधिकों की सेवा करते।

श्रुत-सेवा में गुरुवर रहते ॥ 52 ॥

(व्युत्सर्ग, ध्यान)

कायोत्सर्ग में तन को भूलें।

आत्मध्यान में सम-रस गुरु लें ॥ 53 ॥

(मनोगुप्ति)

विषय न चिंते इन्द्रिय के गुरु।

मन-गुप्ति से गुप्त रहें गुरु ॥ 54 ॥

(वचनगुप्ति)

वचनों से न पाप बोलते।

मौन-धार गुरु, आत्म-साधते ॥ 55 ॥

(कायगुप्ति)

गुरु तन की चेष्टा भी जब ना।

निज को निज में, निज से भजना ॥ 56 ॥

(गुरु-गुण महिमा)

मोक्षमार्ग-सुख, गुरु से होता।

स्वर्ग-मोक्ष भी गुरु से होता ॥ 57 ॥

★ ★ ★

बिन गुरु के न कुछ होता है।

जहाँ गुरु हों सब होता है ॥ 58 ॥

★ ★ ★

गुरु-चर्या में दिखे साधना।
गुरु-दर्शन ही, है आराधना ॥ 59 ॥

★★★

गुरु में, प्रभु का दर्शन होता।
बनें विरागी निज में खोता ॥ 60 ॥

★★★

गुरु सरल हों, सरल हो जीवन।
कपट नहीं फिर, पावन हो मन ॥ 61 ॥

★★★

उपसर्गों में सहनशीलता।
गुरु को देखें आये धीरता ॥ 62 ॥

★★★

गुरु में समता सदा ही होती।
दुख को हरती गुरु की ज्योति ॥ 63 ॥

★★★

जहाँ गुरु हों आत्म-सौख्य हो।
ध्यानी बनकर मोक्ष शीघ्र हो ॥ 64 ॥

★★★

गुरुवर-चित्त की निर्मलता में।
शिष्य बढ़ें गुण-परिमलता में ॥ 65 ॥

★★★

गुरु प्रसन्न हों ऐसी सेवा।
बड़े साधना सुख की मेवा ॥ 66 ॥

★★★

गुरु-वाणी पर श्रद्धान हो जब।
सकल कार्य का वरदान हो तब ॥67॥

★★★

गुरु भक्ति में बहुत शक्ति है।
सर्व-क्षेत्र में गति, उन्नति है ॥68॥

★★★

गुरु-गुण गाना भाग्य रहा है।
चरण मिलें सौभाग्य कहा है ॥69॥

★★★

गुरु-दृष्टि में सबका जीवन।
मंगलमय हो पवित्र पावन ॥70॥

★★★

गुरु-सुरत्न से आतम चमके।
मोक्षमार्ग पा, शुभ-गुण महकें ॥71॥

★★★

रत्नत्रय गुरुवर से मिलते।
गुरु-आशी पा, शिवपथ चलते ॥72॥

★★★

गुरु-आशीष ही खुशियाँ भरता।
सुमार्ग-पा भवि मंजिल चढ़ता ॥73॥

★★★

गुरु-समर्पण वरद-हाथ हो।
बढ़ें मोक्ष-पथ, दिन व रात जो ॥74॥

★★★

गुरु-आज्ञा अमृत-सम भाती।
गुरु-वच-पालन, आत्म सुहाती ॥ 75 ॥

★★★

गुरुवर-मौन हमें है भाता।
सब-पापों को शीघ्र नशाता ॥ 76 ॥

★★★

गुरु का ध्यान, ध्यान में आता।
कर्म-निर्जरा खूब कराता ॥ 77 ॥

★★★

गुरु की भक्ति शक्ति देती।
पापों से है मुक्ति देती ॥ 78 ॥

★★★

गुरु-नाम से सभी काम हैं।
गुरु-नाम से सुबह शाम है ॥ 79 ॥

★★★

गुरु-नाम लें नित विश्राम है।
गुरु-नाम से चारों-धाम हैं ॥ 80 ॥

★★★

भारत-भूमि धन्य-धन्य है।
गुरु जन्मे जहँ सौख्य-जन्य है ॥ 81 ॥

★★★

स्वर्ग-मोक्ष के दायक गुरु हैं।
पापों के प्रक्षालक गुरु हैं ॥ 82 ॥

★★★

गुरु-पद-रज से गात्र-शुद्ध हो।
पाद-नीर से मन-विशुद्ध हो ॥83॥

★★★

गुरु-उपकरण हाथ लगे तो।
बड़-भागी सौभाग्य जगे वो ॥84॥

★★★

गुरु की सीख भाग्य से मिलती।
अनुभव-वृद्धि कार्य जु करती ॥85॥

★★★

गुरु से हट न कभी जो करते।
सहज ही ज्ञानीपन को वरते ॥86॥

★★★

गुरु के कदमों पर जो चलते।
मोक्षमार्ग में शीघ्र ही ढलते ॥87॥

गुरु-विनय से पुण्य-अपार।
नैया होती भव से पार ॥88॥

★★★

गुरु से मिलती पहले दीक्षा।
सार्थक होती है तब शिक्षा ॥89॥

★★★

गुरु-रक्षा है सही समाधि।
इससे बड़ी है नहीं उपाधि ॥90॥

★★★

गुरु-आशीष वरदान बड़ा है।
सेवा में फिर लोक खड़ा है ॥91॥

★★★

नजर पड़े जब गुरु की हम पर।
सहज बने सब-काम निरन्तर ॥92॥

★★★

गुरु प्रसन्न जहाँ होते वे।
भक्त, शिष्य हों धन्य-धन्य वे ॥93॥

★★★

गुरु-सेवा में पुण्य महा है।
ऐसा अवसर और कहाँ है ॥94॥

★★★

गुरु-उपकार है जग में न्यारा।
गुरु-नाम है जग को प्यारा ॥95॥

★★★

गुरु से बढ़ती महानता है।
गुरु से आती प्रधानता है ॥96॥

★★★

गुरु बढ़ाते कदम हमारे।
गुरु रक्षक हैं परम हमारे ॥97॥

★★★

गुरु को भविष्य; शिष्य का दिखता।
गुरु निभाते धर्म का रिश्ता ॥98॥

★★★

गुरु कीमती प्राणों से भी।
न तुलना मेहमानों से भी ॥ 99 ॥

★ ★ ★

पंचगुरु-नाम, जगत् में प्यारा।
सरागी गुरुओं से है न्यारा ॥ 100 ॥

★ ★ ★

सद्गुरु-जीवन जग में अच्छा।
गुरु-पथ-सा न कोई सच्चा ॥ 101 ॥

★ ★ ★

गुरु-उपकार का कर्ज चुकायें।
गुरु-चर्या में हम ढल जायें ॥ 102 ॥

★ ★ ★

गुरु-सेवा-सम कर्म न उत्तम।
गुरु मार्ग दे सुख परमोत्तम ॥ 103 ॥

★ ★ ★

गुरु-विनय, अविनय है वैसी।
आग पकाये व जलाये जैसी ॥ 104 ॥

★ ★ ★

गुरु-समर्पित तिर जाते हैं।
गुरु-निंदा से भरमाते हैं ॥ 105 ॥

★ ★ ★

खुश हों गुरुवर, सब मिलता है।
ना खुश गुरुवर दुःख मिलता है ॥ 106 ॥

★ ★ ★

गुरु माँझी हैं, पार-लगाते।
ना छोड़ें गुरु, भव-तिर जाते ॥ 107 ॥

★★★

गुरु-बिन जीवन है निस्सार।
गुरु से सपने हों साकार ॥ 108 ॥

★★★

गुरुवर सब के तारणहार।
धर्मी पर हो गुरु-उपकार ॥ 109 ॥

★★★

गुरु में बसते हैं सब-धाम।
गुरु में बसते आतम-राम ॥ 110 ॥

★★★

गुरुवर सेवा है शुभ-काम।
गुरु से होता जग में नाम ॥ 111 ॥

★★★

गुरुवर से हो सम्यग्ज्ञान।
गुरुवर से होता शुभध्यान ॥ 112 ॥

★★★

गुरुवर से होता कल्याण।
गुरुवर से हो मोक्ष-महान ॥ 113 ॥

★★★

गुरु से स्वात्म बोध मिलता है।
आत्म-तत्त्व महान बनता है ॥ 114 ॥

★★★

गुरु-चरणों में सदा नमन हो।
हम भक्तों का सब अर्पण हो ॥ 115 ॥

★★★

गुरु-आदर, सम्मान के साथ।
दुःख आवें न, सब-जन साथ ॥ 116 ॥

★★★

गुरु-उपदेश, मान आदेश।
जिससे मिटते, सारे क्लेश ॥ 117 ॥

★★★

गुरु से करे ईर्ष्या जो।
न गुण गाये, भटके वो ॥ 118 ॥

★★★

गुरु-वचन शुभ, उपकारक हैं।
कहे उपकरण , शिव-कारक हैं ॥ 119 ॥

★★★

गुरु-आशीष में, शक्ति बड़ी है।
श्रद्धा-मात्र, सुविधाएँ खड़ी हैं ॥ 120 ॥

★★★

गुरु-सेवा में अमित-पुण्य है।
हो प्रभावना भी अक्षुण्य है ॥ 121 ॥

★★★

मोक्ष-पथ गुरु से, शुरु होता है।
बिन गुरु; जीवन शून्य होता है ॥ 122 ॥

★★★

मोक्ष-पथ गुरु से पूर्ण होता है।
गुरु-सह जीवन धन्य होता है ॥ 123 ॥

★ ★ ★

गुरु पास हों भय मिटता है।
गुरु साथ हों बल मिलता है ॥ 124 ॥

★ ★ ★

गुरु बिन लक्ष्य दूर होता है।
गुरु हों, लक्ष्य निकट होता है ॥ 125 ॥

★ ★ ★

हे ! जिन-मुद्रा-धारक-गुरुवर।
सदा नमन भव-तारक गुरुवर ॥ 126 ॥

★ ★ ★

प्रशस्ति

'गुरु-गुण-महिमा' रची उपहार।
पिण्डरई से नैन-पुरी विहार ॥ 127 ॥

★ ★ ★

जग-गुरु वीर संवत् निर्वाण।
पच्चीस सौ अढ़तालीस जान ॥ 128 ॥

★ ★ ★

अगहन-योग सह, शीत-काल जब।
ससंघ का शुभ, -विहार-काल तब ॥ 129 ॥

★ ★ ★

गुरु-गुण-महिमा, गाकर हम सब।
धन्य हुए, शिव-पायें हम सब ॥ 130 ॥

★ ★ ★

मोक्ष-मार्ग भवि, एक-सहारा।
मोक्ष-वरे गुरु-आशीष प्यारा ॥ 131 ॥

★ ★ ★

असीम कृपा विद्या-गुरुवर की।
आर्जवता की शिक्षा भर दी ॥132 ॥

★ ★ ★

'**आर्जव**' बन कर, गुरु-गुण गायें।
शिवपथ चल हम, शिव-सुख पायें ॥ 133 ॥

दोहा

वृषभ, अजित, संभव नमूँ, नमूँ सभी जिननाथ ॥
परमेष्ठी गुरु-गुण नमूँ, देयँ मोक्ष तक साथ ॥134 ॥

★ ★ ★

आशीर्वाद शतक

(गुरु–आशीर्वाद का अतिशय)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

आशीर्वाद शतक

- आशीर्वाद दिल से होता
- आशीर्वाद का भाव
- संस्कार का वैभव
- रत्नत्रय का लाभ
- पुण्य वृद्धि
- गम मिटता
- गुरु की दूर दृष्टि
- श्रद्धा और आज्ञा
- दीक्षा संकल्प
- संघ-वृद्धि
- शुभ-चर्या
- भाव-विशुद्धि
- आत्म-विशुद्धि
- सिद्धालय में वास
- पुण्य क्षेत्र अतिशयकारी
- धर्म-रथ, मोक्ष मार्ग-पथ
- रथ चक्र; श्रावक-मुनि
- तीर्थंकर उपहार
- चातुर्मास के सभी पर्व
- वीर प्रभु संदेश
- ज्ञान वृद्धि
- अनुभव वृद्धि
- गुरु दर्श में भाग्य
- वचनामृत सौभाग्य
- अपनेपन का भाव
- अति निकटता
- संतोषी जीवन
- अंतरंग हर्ष
- शिष्य भविष्य
- गुरु-रज पावन
- गुरु-टहल
- गुरु-उपकरण
- पद संवाहन
- गुरु-उपकरण
- गुरु-स्वप्न
- गुरु-मंत्र
- विघ्न नाशक
- गुरु-प्रसन्नता
- ऊर्जा वृद्धि
- आभा मण्डल
- गुरु छाया
- चिंतायें भागे
- ध्यान जागे
- धर्म की शान
- जीवन का वरदान
- आसन्न भवि
- गुरु-समर्पण

मंगल-गुरु आशीष

(आशीर्वाद दिल से होता)

आशीर्वाद तो दिल से होता।
हस्त मात्र तो ऊपर दिखता ॥ 1 ॥

(आशीर्वाद का भाव)

दिल में जब कल्याण भावना।
नियम बढ़ाते हो प्रभावना ॥ 2 ॥

(संस्कार का वैभव)

संस्कारों का वैभव पायें।
गुरु सान्निधि में पुण्य बढ़ायें ॥ 3 ॥

(रत्नत्रय का लाभ)

गुरु से ज्ञान-चरित बढ़ता है।
जीवन उन्नत शुभ बनता है ॥ 4 ॥

(पुण्य वृद्धि)

धर्म करो शुभ पुण्य भरेगा।
गुरु आशीष नित धन्य करेगा ॥ 5 ॥

(गम मिटता)

मेरा नित आशीष तुम्हें है।
देख धर्म तव, खुशी हमें है ॥ 6 ॥

★ ★ ★

शुभंअस्तु से शुभ होता है।
जिससे सारा गम खोता है ॥ 7 ॥

★ ★ ★

आशीर्वाद में बड़ा ही दम है।
जीवन में न रहता गम है ॥ 8 ॥

★★★

सच्चा जन्म धर्म का होता।
जिससे पुनः हि जन्म न होता ॥ 9 ॥

★★★

गुरु आशीष जहाँ मिल जाता।
नहीं कष्ट कुछ भवि वह पाता ॥ 10 ॥

★★★

गुरुओं के हम साथ चलेंगे।
अनंत सुख पा नाथ बनेंगे ॥ 11 ॥

(गुरु की दूर दृष्टि)

दूर दृष्टि है, गुरु की होती।
स्वीकारे; श्रद्धा की ज्योति ॥ 12 ॥

★★★

गुरु चिंतवन वह जब है भाता।
मोक्षमार्ग है तभी सुहाता ॥ 13 ॥

★★★

गुरु मुख से जिनवाणी सुनते।
बढ़ें नियम, व्रत, मन में गुनते ॥ 14 ॥

★★★

गुरुवर का आशीष रहे जब।
दुःख आते वे कभी नहीं तब ॥ 15 ॥

★★★

गुरु के गुण वे शीघ्र ही आते।
दुर्गुण जब वे कभी न भाते ॥ 16 ॥

★★★

व्रत की महिमा स्वर्ग दिलाये।
धर्मामृत भी खूब पिलाये ॥ 17 ॥

★★★

व्रत का फल सुख शांति देता।
दुर्गति दुःख आपद् हर लेता ॥ 18 ॥

(श्रद्धा और आज्ञा)

गुरु आज्ञा में खुशी जहाँ है।
शिष्य कहीं भी, सुखी वहाँ है ॥ 19 ॥

★★★

श्रद्धा जितनी बढ़ती जाये।
गुरु आज्ञा भी उतनी भाये ॥ 20 ॥

★★★

गुरु तुष्ट हों, कभी न भूलें।
गुरु प्रभावना लख-लख फूलें ॥ 21 ॥

★★★

आचार्यों की भक्ति बड़ी है।
पुण्य बढ़ें सुविधाएँ खड़ी हैं ॥ 22 ॥

★★★

गुरु खुश होते बढ़े विशुद्धि।
नियम साधना हो, निज शुद्धि ॥ 23 ॥

★★★

दण्ड लेयँ हम, पद भी छू लें।
गुरु, गल्तियों को तब भूलें ॥ 24 ॥

(संघ-वृद्धि)

उपवन बढ़े, महकता जाये।
संघ वृद्धि हो गुरु को भाये ॥ 25 ॥

(दीक्षा-संकल्प)

दीक्षा का शुभ भाव धन्य है।
दीक्षा का संकल्प धन्य है ॥ 26 ॥

(गुरु-सम उपकरण)

मैं भी चाहूँ पिच्छि साथ हो।
मैं यह चाहूँ कमण्डल हाथ हो ॥ 27 ॥

(शुभ-चर्या)

दिन-चर्या हो शुभ-चर्या हो।
भाव-विशुद्धि, शुभ-क्रिया हो ॥ 28 ॥

लौकिक सब संपर्क दूर हों।
आवश्यक में मनस् पूर हो ॥ 29 ॥

(भाव-विशुद्धि)

ध्यान रहे नित प्रभु, गुरुवर का।
वचन मिष्ट हों भाव भी हित का ॥ 30 ॥

(आत्म-विशुद्धि)

ध्यान लगावें आत्म-शुद्ध हो।
कर्म कटें बस आत्म-सिद्धि हो ॥ 31 ॥

★ ★ ★

दीक्षा निवेदन भाग्य जानते।
बड़ा क्षयोपशम भाग्य मानते ॥ 32 ॥

★ ★ ★

करें निवेदन, कर श्रीफल हो।
वरद हस्त गुरु, कार्य सफल हो ॥ 33 ॥

★ ★ ★

दीक्षा धर हो तीर्थ वंदना।
ज्ञान, ध्यान नित, हो आराधना ॥ 34 ॥

★ ★ ★

दीक्षा का फल सल्लेखन है।
सल्लेखन फल मोक्ष गमन है ॥ 35 ॥

(सिद्धालय में वास)

सिद्धक्षेत्र है सिद्ध बनें हम।
सिद्धालय में वास करें हम ॥ 36 ॥

★ ★ ★

गुरुओं के हम भक्त बनेंगे।
अनंत सुख पा सिद्ध बनेंगे ॥ 37 ॥

★ ★ ★

सम्मेदाचल परम पूज्य है।
पूजक बनता, शीघ्र पूज्य है ॥ 38 ॥

(पुण्य-क्षेत्र अतिशयकारी)

पुण्य-क्षेत्र, अतिशय कारक है।
बढ़े पुण्य, पाप नाशक है ॥ 39 ॥

★ ★ ★

चाह हमारी सिद्ध बनें हम।
हो जिनवाणी सेवक हर दम ॥ 40 ॥

(धर्म-रथ)

धर्म भी, एक रथ होता है।
मोक्ष-मार्ग इक पथ होता है ॥ 41 ॥

★ ★ ★

श्रावक धर्म, इक चाक सदृश है।
मुनि धर्म भी साथ चक्र है ॥ 42 ॥

★ ★ ★

जहाँ गृहि हों, मुनिवर आते।
संस्कार, व्रत गृहि वे पाते ॥ 43 ॥

★ ★ ★

गृहि, मुनिवर से धर्म बढ़े नित।
इसी योग से पूरा हो हित ॥ 44 ॥

★ ★ ★

कभी न गुरु को भूल है जाना।
कभी स्वार्थ में फूल न जाना ॥ 45 ॥

★ ★ ★

गुरु के पथ पर, नित प्रति जाना।
गुरु आशी पा सद्गति पाना ॥ 46 ॥

★ ★ ★

गुरु से सच-सच, कहते भविजन।
गुरु-सम सद्गुण गहते सज्जन ॥ 47 ॥

(तीर्थंकर उपहार)

सेवा गुरु की, पुण्य अपार।
तीर्थंकर-सम पद उपहार ॥ 48 ॥

★★★

सिद्धचक्र का योग सफल हो।
गुरु आशीष का उत्तम फल हो ॥ 49 ॥

(चातुर्मास के सभी पर्व)

आष्टाह्निक का पर्व जगत् में।
गुरु सन्निधि से होय सुखद्-मय ॥ 50 ॥

★★★

वर्षायोग का योग मिले जब।
गुरु वाणी हो पुण्य फले तब ॥ 51 ॥

★★★

सोलहकारण पर्व सुहाता।
गुरु आशी से जीवन भाता ॥ 52 ॥

★★★

दशलक्षण जब पर्व है आता।
गुरु प्रवचन से पुण्य बढ़ाता ॥ 53 ॥

★★★

गुरु पूर्णिमा, पूर्ण सुखों से।
गुरु मिलन हो, हरे दुःखों से ॥ 54 ॥

★★★

दीपावली की सुदीप ज्योति।
गुरु-पूजन से मंगल होती ॥ 55 ॥

★★★

वीर प्रभो भव,-मुक्त हुये जब।
गुरु भी योग से मुक्त होयँ तब ॥ 56 ॥

★★★

कर्म बंध से मुक्त हुए जिन।
वर्षायोग गुरु मुक्त होय दिन ॥ 57 ॥

(वीर प्रभु संदेश)

वीर जयन्ती महिमा न्यारी।
दे सन्देश गुरु, शिक्षा प्यारी ॥ 58 ॥

★★★

अहिंसा सत्य, अचौर्य गुरु भाते।
ब्रह्मचर्य निस्संग सुहाते ॥ 59 ॥

★★★

अक्षय तृतीया दान महोत्सव।
आदि गुरो-सम बनने उत्सव ॥ 60 ॥

★★★

श्रुत-पंचमी पर्व बना है।
ज्ञानी गुरुपद, देय घना है ॥ 61 ॥

★★★

वर्षायोग का काल मिले जब।
गुरु चौमासा योग मिले तब ॥ 62 ॥

★★★

शीतकाल ऋतु, वाचना देती।
गुरु संज्ञान, ज्योति भर देती ॥63॥

★★★

ग्रीष्म काल का योग मिले जब।
गुरु से भवि का, ज्ञान बढ़े तब ॥64॥

★★★

गुरु विहार में अनुभव बढ़ता।
सेवा से भवि शिवपथ चढ़ता ॥65॥

★★★

गुरु आहार, भवि पुण्य बढ़ाये।
व्रत दे, शिव-सोपान चढ़ाये ॥66॥

★★★

गुरु कमण्डल, ले भवि चलते।
पुण्य बढ़े दुःख; सुख में ढलते ॥67॥

★★★

सभी क्षेत्र में उन्नति होती।
गुरु-सम बढ़े ज्ञान की ज्योति ॥68॥

(वचनामृत सौभाग्य)

गुरु दर्शन हो भाग्य रहा है।
वचनामृत सौभाग्य रहा है ॥69॥

★★★

चिंतन गुरु का भक्त जनों में।
भक्ति उमड़े भक्त मनों में ॥70॥

(अपनेपन का भाव)

गुरु; शिष्य की चिंता करते।
अपनेपन के भाव उमड़ते ॥ 71 ॥

(अति निकटता)

गुरु डाँटते जहाँ शिष्य को।
अति निकटतम मान शिष्य वो ॥ 72 ॥

★★★

दण्ड; गुरुवर देते गर वे।
विशुद्ध बनाते करुणा-धर वे ॥ 73 ॥

★★★

शिष्य विशुद्धि गुरु को भाती।
शिष्योन्नति को वह बतलाती ॥ 74 ॥

★★★

शिष्यों की समतामय छवि वह।
गुरु को भाती चर्या सभी वह ॥ 75 ॥

★★★

संतोषी वह शिष्य जहाँ हो।
गुरु खुश होते साथ वहाँ हों ॥ 76 ॥

★★★

शिष्य-विनय को लखते गुरुवर।
अंतरंग में हरषें गुरुवर ॥ 77 ॥

(शिष्य भविष्य)

शिष्य-भविष्य, गुरुवर को दिखता।
निकट दूर अन्तर भी दिखता ॥ 78 ॥

★★★

गुरु का आसन कौन वरेगा।
गुरु भावों, सम पास चलेगा ॥ 79 ॥

★★★

गुरु भाव न दुःखी कदा हों।
ऐसी चर्या शिष्य सदा हो ॥ 80 ॥

★★★

गुरु-समर्पण जीवन जिसका।
भव का तारक, मन है उसका ॥ 81 ॥

★★★

गुरु सेवा ही चाह रही है।
गुरु की ही बस राह सही है ॥ 82 ॥

(गुरु-रज पावन)

गुरु-रज जीवन पावन करती।
सब कष्टों को अविरल हरती ॥ 83 ॥

★★★

गुरु-पद संवाहन जो करते।
महापुण्य से भविजन भरते ॥ 84 ॥

(गुरु-टहल)

गुरु-आहार में टहल करे जो।
सातिशय बहु पुण्य भरे वो ॥ 85 ॥

(गुरु-उपकरण)

गुरु-उपकरण शोधन करना।
गुरु-अनुभव से निज को भरना ॥ 86 ॥

★★★

गुरु का सदा हि ध्यान रखे जो।
गुरु–सम गुणगण शीघ्र वरे वो ॥87॥

(गुरु-स्वप्न)

गुरु के स्वप्न जिसे दिखते हैं।
गुरु भविष्य उसका लखते हैं ॥88॥

(गुरु-मंत्र)

गुरु–मंत्र उत्तम होता है।
सर्व विघ्न नाशक होता है ॥89॥

(गुरु-प्रसन्नता)

गुरु–प्रसन्नता, ऊर्जा भरती।
कठिन कार्य को शीघ्र ही करती ॥90॥

(आभा मण्डल)

आभा मण्डल गुरु का ऐसा।
शांति–प्रदायी, प्रभुवर जैसा ॥91॥

(गुरु-छाया)

गुरु की छाया अतिशयकारी।
गुरु–गुण वैभव है सुखकारी ॥92॥

★ ★ ★

गुरु हमारे भगवन् प्यारे।
जग अलिप्त निज–ध्यानी न्यारे ॥93॥

★ ★ ★

गुरु वैरागी तत्त्व बताते।
सारे भ्रम गुरु से मिट जाते ॥94॥

(चिंतायें भागे)

जग-चिंतन चिंतायें भागें।
गुरु निकट, निज-ध्यान है जागे ॥95॥

★★★

गुरु बनें, तीर्थंकर भगवन्।
'**आर्जवता**' से पूजें जन जन ॥96॥

★★★

अरिहंत सिद्ध आचार्य हमारे।
उपाध्याय साधु गुरु प्यारे ॥97॥

★★★

पंच गुरु हैं, शरण हमारे।
भव-सागर से भवि को तारें ॥98॥

★★★

अनंतों हैं गुण भाव हमारे, धर्म वृद्धि की भावना।
आगे बढ़े हि नियम वे सारे, मोक्षमार्ग की साधना ॥99॥

★★★

मंगलमय जीवन रहे, मंगलमय हो राह।
मंगलमय भावन बने, मंगल मुक्ति चाह ॥100॥

★★★

गुरु जगत् से पूज्य हैं, कहलाते भगवान।
जिनके दर्शन ज्ञान से, बढ़े धर्म की शान ॥101॥

★★★

गुरु न होते लोक में, मार्ग मिले ना मोक्ष।
गुरु से दर्शन ज्ञान व, चरित मिले फिर मोक्ष ॥ 102 ॥

★★★

गुरु मिलें जीवन में, जीवन का वरदान।
ज्ञान, दर्श, चारित्र मिले, यही गुरु का दान ॥ 103 ॥

★★★

श्रद्धा से स्वीकारें सब, यही है गुरु, सम्मान।
क्षमा विरागी संतोषी, यही है सच्चा ज्ञान ॥ 104 ॥

★★★

गुरु आज्ञा, कला कुशल, में हो जिनका ध्यान।
सदा ही गुरु की दृष्टि में, वही हो शिष्य महान ॥ 105 ॥

(आसन्न भवि)

प्रसन्न शिष्य हों, प्रसन्नता से, गुरु भी होते प्रसन्न।
राह चले जो गुरुवर की, नित हो भवि आसन्न ॥ 106 ॥

★★★

गुरु माता, गुरुवर पिता, गुरुवर हों खुशहाल।
होय समर्पित, पुण्य से, फिर हों मालामाल ॥ 107 ॥

★★★

गुरु; दर्श वे दें या न दें, दिल में साथ रहेंगे।
गुरु; बोलें व न वे बोलें, नित दिल से बोलेंगे ॥ 108 ॥

★★★

गुरु; सुनें व न सुनें वे, गुरु मन से सुन लेंगे।
गुरु; संग वे चलें न चलें, शिव में संग हो लेंगे ॥ 109 ॥

(प्रशस्ति)

संवत् वीर पच्चीस सौ, इक्यावन शुभ जान।
'आशीर्वाद शतक' बना, काव्य परम पहचान ॥ 110 ॥

★★★

विद्या गुरु की है कृपा, मंगलमय शुभकार्य।
आर्जव बनकर भवि करें, प्राप्त मोक्ष सुख आर्य ॥ 111 ॥

★★★

जहाँ पिड़ावा है नगर, धर्म गुणों की खान।
चाँदी का जिन-रथ बना, भवि पुरुषार्थ महान ॥ 112 ॥

★★★

न्याय नीति से धन मिला, दिया धर्म को दान।
प्रेरक-गुरु आशीष-पा, नर-सुर दें सम्मान ॥ 113 ॥

★★★

धरती पावन पूर्ण है, बना परम इतिहास।
साधु आते नित रहें, नगर रहे कुछ खास ॥ 114 ॥

★★★

रथ-यात्रा का योग यह, उत्सव प्यारा मान।
भव-भव के भवि पुण्य का, भरा खजाना जान ॥ 115 ॥

★★★

धर्म-भावना शतक

(दस धर्मों की पद्यमय रचना)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

विषय-वस्तु

धर्म-भावना शतक

!! मंगलाचरण !!
रत्नत्रय से विशुद्ध मुनियों के दशलक्षण
दशधर्मों का नाम कथन
1. उत्तम-क्षमा-धर्म-वर्णन
   विभाव से स्वभाव की प्राप्ति
   क्षमा शब्द का आन्तरिक अर्थ
   प्रतिकूलता में समता
   उपसर्गों में सहनशीलता
   क्रोध का फल
   भगवान पार्श्वनाथ की क्षमा
2. उत्तम-मार्दव-धर्म-वर्णन
   मान और विनय का प्रतिफल
   कोमलपन का फल
   गर्व का फल दुर्गति
   बालि का स्वाभिमान
   सम्यक्त्व रक्षा हेतु राज्य त्याग
   विमान कहाँ-कहाँ रुकता है?
   बालि मुनि द्वारा धर्म-रक्षा
   नम्रता में आत्म-रक्षा
   रावण नहीं राम बनो!
3. उत्तम-आर्जव-धर्म-वर्णन
   आर्जवता में आतम-रस...
   वक्रता में आत्मा का घात
   त्रियोग की एकता.........
   अशुभ ध्यान का उदाहरण
   मायाचार और ऋजुता का फल?
   कपटी-नारी की विशेषताएँ
   मायाचार का उदाहरण
   भोगों की कल्पना व्यर्थ!
   माया लख विरक्त हुआ राजा
   क्या छुपाएँ और .....
   आर्जवता से उत्तम कीर्ति
4. उत्तम-शौच-धर्म-वर्णन
   मन की शुचिता ...
   पापों का मूल लोभ
   पवित्र-मन में ग्लानि का अभाव
   लोभातिरेक का कड़वा फल
   तृष्णा की खाई की पूर्ति असंभव
   धर्म फीका क्यों लगता?
   भव-भटकन के कारण भोग
   सर्व पापों का बाप लोभ
   लोभातिरेक से पुण्य का नाश
   पुण्यानुबन्ध पुण्य से रक्षा
5. उत्तम-सत्य-धर्म-वर्णन
   सज्जनों से हितकर वचन कहें
   मौन है जिनवर-सम वृत्ति
   असत्य छुपता नहीं
   असत्य का फल दुर्गति
   सत्य का निर्दोष पालन कैसे?
   निर्लोभता में सत्य की रक्षा
   सत्वादियों की शक्ति परीक्षा
   साधु की वाणी भ्रम दूर करे
   सत्वादी की सदा रक्षा
   सन्मार्ग का फल
6. उत्तम-संयम-धर्म-वर्णन
   संयम रूपी नौका से मोक्ष
   इन्द्रियों का नियंत्रण संयम है
   निश्चय और व्यवहार संयम

मन का संयम ही सर्वोच्च है
आत्मा पर संयम-लगाम ...
संयम के विभिन्न स्थान
पंचेन्द्रियों के असंयम ...
असंयम दुःख का कारण है
संयम से केवलज्ञान
7. उत्तम-तप-धर्म-वर्णन
प्रशंसनीय है निःस्वार्थ तपस्या
घोर-तप से शान्ति की वर्षा
समताधारी जगत्-पूज्य...
बारह तपों से संवर और...
बाह्य-तपों की साधना
सोत्साह तपस्या
आत्म-ध्यान में स्वाधीनता
तप से भेद-विज्ञान
ध्यानाग्नि से आत्मशुद्धि ...
8. उत्तम-त्याग धर्म-वर्णन
संयोगज पर पदार्थों का त्याग
गृहि और मुनि का त्याग
मोक्षमार्ग का सुखानुभव ......
वैषयिक सुख में पाप बंध
सिद्धों का सुख किसे मिलता?
शुद्धात्मा का अनुभव कैसे?
विराग-भावों का परिणाम
चोरों की दीक्षा कैसे?
भाग्यवान हैं वैरागी-जन
9. उत्तम-आकिञ्चन्य-धर्म-वर्णन
आकिञ्चन्य में चिन्ता का अभाव
आत्मसाधना में कर्मबंध से रक्षा
आत्मा का वास्तविक स्वरूप
बाहुबली का सद्विचार
लय-परिवर्तन
भरतेश का असद्-विचार
स्वार्थी-संसार लख-वैराग्य
अकिञ्चन्य हुये बाहुबली, ...
उत्तम-ज्ञानी का लक्षण
दिगम्बर की परिभाषा
10. उत्तम-ब्रह्मचर्य-धर्म-वर्णन
अठारह हजार शीलों ...
ब्रह्मचर्य में समता रस का पान
सर्वोत्तम आत्मशासक ब्रह्मचारी
वीर-पुरुष कौन?
शील बिना सुख नहीं
शीलवान सुदर्शन की दृढ़ता
शीलवन्त हुआ देवों से पूज्य
रावण का शील
शील का फल तीर्थंकर
सति-सीता की परीक्षा
शीलवन्तों के अतिशय
दसलक्षण-धर्म का महत्व...
क्षमावाणी कैसे मनायें?
अन्तिम-भावना और प्रशस्ति

मंगलाचरण

(रत्नत्रय से विशुद्ध मुनियों के दशलक्षण)

मोक्षमार्ग में रत्नत्रय से, शुद्ध बने वह भव्य रहा।
भव्य साधु का दशलक्षण यह, वीर-प्रभु ने धर्म कहा ।।
'धर्म' इसी का कथन करूँ मैं, धर्मभावना लघु कृति में ।
वीर-प्रभु को नमन करूँ मैं, कर्म हरूँ पा सन्मति मैं ।।1।।

(दशधर्मों का नाम कथन)

क्षमा-भाव से मार्दव बन यति, आर्जवता को अपनाते।
शौच, सत्य का पालन करके, महा-गुणी वे बन जाते।।
संयम, तप जब धारण करते, त्याग राग को सुख पाते।
आकिञ्चन बनकर यतिवर वे, ब्रह्मातम में रम जाते।।2।।

1. उत्तम-क्षमा-धर्म-वर्णन

(विभाव से स्वभाव की प्राप्ति)

दूध रूप इस आतम को जब, क्रोध रूप वह अनल मिले।
स्व-स्वभाव को छोड़े उबले, उफन; धूल में जहाँ मिले ।।
क्षमा-रूप जल बूँद पड़े तो, स्व-स्वभाव की ओर ढले।
क्रोधानल संपर्क हटा तो, ना विभाव की ओर ढले ।।3।।

(क्षमा शब्द का आन्तरिक अर्थ)

संयोग मिले जब 'क्' अरु 'ष्' का, पूर्ण 'क्ष' अक्षर बनता है।
'क्' का अर्थ यह आतम होता, 'ष्' का अर्थ उत्तमता है।।
'मा' का अर्थ है जिनवाणी माँ, जो सबकी रक्षा करती।
ऐसी क्षमा-माँ उत्तमात्मा, क्रोध-मिटा रक्षा करती।।4।।

(प्रतिकूलता में समता)

क्षमा-धर्म नित पालन करके, मुनि उपसर्ग सहा करते ।
अभद्र-वचन व कटु-वचनों में, वे न क्रोध कभी करते ।।
देखो! स्वामी सुकुमाल वा, सुकौशल साम्यधारी को ।
जीता था उपसर्ग जिन्होंने, नमस्कार उन ज्ञानी को ।।5।।

(उपसर्गों में सहनशीलता)

जब स्वामी उन सुकुमाल ने, घोर महा उपसर्ग सहा ।
तीन दिवस तक स्यालनी ने, खाया तन, मन अडिग रहा ।।
बारह-भावन के चिन्तन में, क्षमा-धर्म को ध्याया था ।
सर्वार्थसिद्धि में जाकर के, पुण्य सुफल को पाया था ।।6।।

(क्रोध का फल)

द्वीपायन का क्रोध देख लो, जली द्वारिका यादव भी ।
भाव-लिङ्ग वह गया आत्म से, कुदर्श आया गारव भी ।।
अशुभ तेज से स्वयं भस्म हो, नहीं सुगति को पाया था ।
क्षमा रहित उस क्रोध-भाव से, महा कष्ट उपजाया था ।।7।।

(भगवान पार्श्वनाथ की क्षमा)

पार्श्वनाथ की क्षमा देख लो, नहीं कमठ पर क्रोध किया ।
बाह्याभ्यन्तर शत्रु जीते, केवलज्ञान सु-प्राप्त किया ।।
सभी शत्रु वे मित्र बने फिर, समवसरण की शरण गही ।
धर्म सुना सद्दर्शन पाया, धर्म बना आभरण सही ।।8।।

2. उत्तम-मार्दव-धर्म-वर्णन

(मान और विनय का प्रतिफल)

कठोर होता वट तरु वह जो, न सह पाता है तूफान।
उखड़ मूल से नीचे गिरता, न है उसमें मृदुता जान।।

बांस-वृक्ष वह सह लेता है, क्योंकि मृदुसम वह होता।
झुक जाता है भू चरणों में, विनय-शील वह कहलाता।।9।।

(कोमलपन का फल)

कठोर-भू पर पानी पड़ता, बने रूई समान कोमल।
बीज पड़े तो उसमें देती, नवीन, फिर वह पौधा फल।।
मानी प्राणी धर्म मार्दव, जल पाता कोमल बनता।
ध्यान-बीज से जिनवर पौधा, बन वह मुक्ति फल पाता।।10।।

(गर्व का फल दुर्गति)

बड़े-बड़े वे चक्री गण भी, मान छोड़ फिर मोक्ष गये।
संग सहित गद्दी के मानी, मरे जहाँ फिर नरक गये।।
इक-हजार यक्षों से रक्षित, पट्ट महा जो रानी थी।
रूप गर्व से श्वभ्र गयी वह, जिसकी दुखद कहानी थी।।11।।

(बालि का स्वाभिमान)

बालिराज वे दृढ़तापूर्वक, समकित-मणि के पालक थे।
जिन-मुद्रा के दर्शन की वे, कठिन प्रतिज्ञा-धारक थे।।
रावण-नृप ने उन्हें बुलाया, मुझे नमन करना होगा।
किया अंगूठी में जिन-दर्शन, और राज्य तजना होगा।।12।।

(सम्यक्त्व की रक्षा हेतु राज्य का त्याग)

अगर राज्य में रहें यहां तो, नहीं दर्श-रक्षा होगी।
सरागता की नमन-भक्ति से, धर्म-सुरक्षा न होगी।।
अतः राज्य को छोड़ साधु बन, पर्वत-ऊपर ध्यान किया।
व्रत व जिन-आलय की रक्षा, का मन में संकल्प किया।।13।।

(विमान कहाँ-कहाँ रुकता है?)

नभ में रावण का विमान जब, नभ में ही रुक जाता है।
कौन रहा है शक्तिवान वह? ऐसा चिन्तन आता है।।
जहाँ पूज्य या स्वजन, शत्रु हो, विमान वहाँ रुक जाता है।
नीचे आ मुनि को शत्रु-सम, समझ; रोष बढ़ जाता है।।14।।

(बालि मुनि द्वारा धर्म-रक्षा)

जहाँ बालि-मुनि ध्यान-लीन थे, वहीं जिनालय शोभित थे।
था रावण ने उन्हें उठाया, गिरि-सह, मुनि न क्षोभित थे।।
अगर जिनालय नष्ट हुए तो, जिन-दर्शन कैसे होगा।
सोच दबाया अतः अंगूठा, फिर अपराध क्षमा होगा।।15।।

(नम्रता में आत्म रक्षा)

मानी रावण ने ध्यानी मुनि, बालि पर उपसर्ग किया।
मात्र अंगूठा दबा साधु का, उसने हा-हा कार किया।।
झुका साधु के चरणों में वह, मान आत्मा से निकला।
मान गले बिन धर्म न मिलता, यह अन्दर से सोच भला।।16।।

(रावण नहीं राम बनो!)

मान रखो न तुम रावण-सम, पर का न तिरस्कार करो।
स्वार्थ छोड़ तुम धर्म करो नित, जन-जन का उपकार करो।।
भाई विभीषण ने रावण का, देख स्वार्थ फिर साथ तजा।
किया राम ने जन-जन का उप-कार अतः शुभ मोक्ष भजा।।17।।

3. उत्तम-आर्जव-धर्म-वर्णन

(आर्जवता में आतम-रस का पान)

जिनके सरल विनम्रादि गुण, चंद्रकलाओं-सम बढ़ते।
चेतन उनका निर्मल बनता, दर्पण-सम, ज्ञानी कहते।।

फिर धर्मार्जव पाकरके वे, उत्तम सुख में लीन रहें।
क्षण-क्षण में वे आतम रस का, निर्विकल्प हो पान करें।।18।।

(वक्रता में आत्मा का घात)

होता वक्र धनुष-शस्त्र वह, प्राणों का घातक होता।
अगर आत्म में रहे वक्रता, निज-गुण घात सतत् होता।।
धनुष समान वक्र आतम को, धर्म-शस्त्र से सरल करो।
निश्छल बनकर इस आतम को, गुण-राशि से शीघ्र भरो।।19।।

(त्रियोग की एकता-सह शुभ-प्रवृत्ति का नाम आर्जवधर्म)

स्वार्थ-भाव से अंधे बनकर, धर्म छोड़ जो छल करते।
अपने को श्रीमान बताकर, रावण-सम माला जपते।।
मन-वच-तन की परिणति जब तक, एक व शुभ न बनती है।
नहीं धर्म है रक्षा करता, छलमय जहाँ प्रवृत्ति है।।20।।

(अशुभ ध्यान का उदाहरण)

मुँह में राम-राम करता जो, छुरी बगल में रखता है।
रावण-सम वह परधन हरकर, दुर्गति दुःख को भरता है।।
बगुला का वह ध्यान देख लो, कितना सुन्दर लगता है।
लेकिन मछली का ध्यानी वह, काले मन-सह रहता है।।21।।

(मायाचार और ऋजुता का फल)

मायाचारी तिर्यक्गति में, वा निगोद नारक में भी।
दुःख पाता कष्टों को सहता, कुमरण से वह भव में ही।।
माया त्यागी आर्जवता से, बने पूज्य देवों का भी।
लोक-पूज्य बनता तीर्थंकर, सुख पाता सिद्धों का भी।।22।।

(कपटी-नारी की विशेषताएँ)

नारी का चारित्र तथा वह, पुरुषों का जो भाग्य रहा।
नहीं समझते, देव जहाँ पर, फिर क्या मानव भाग्य रहा।।
मेघ-क्रिया, बिजली-सम नारी, में चंचलता वास करे।
मायाचारी जिस नारी में, कैसे नर विश्वास करे।।23।।

(मायाचार का उदाहरण)

नृप को दे सुन्दर फल कोई, राजा रानी को देता।
रानी देती मंत्री को वह, मंत्री वेश्या को देता।।
वेश्या यह सौभाग्य समझकर, वह फल देती राजा को।
ऐसा कपट देख नारी का, त्याग उपजता राजा को।।24।।

(भोगों की कल्पना व्यर्थ!)

अनन्त जन्मों से भोगा यह, वैभव वही पुराना है।
धर्म-समा उस घृत को तजकर, सौख्य छाछ में माना है।।
लाखों शत्रु मारे मैंने, नहीं आठ को मारा है।
अगर आठ कर्मों को मारूँ, शिव का मिले किनारा है।।25।।

(माया-लख विरक्त हुआ राजा)

राजा का वह त्याग देख लो, धैर्यवान कहलाता है।
धर्म आर्जव पूर्ण प्राप्त कर, आतम शुद्ध बनाता है।।
कर्मशत्रु भी डरकर जिससे, दूर सदा को होते हैं।
भव-बंधन से छुटकारा हो, शिव-सुख में रत होते हैं।।26।।

(क्या छुपाएँ और किसको ढाकें?)

अगर छुपाना कुछ चाहो तो, अपने गुण को ढांको तुम।
पर दोषों को भी ढाँको तुम, दोष तरफ न झाँको तुम।।

सही अवस्था नहीं छुपाओ, मायाचारी त्यागो तुम।
नहीं सजावट और दिखावट, करो, सरलता धारो तुम।।27।।

(आर्जवता से उत्तम कीर्ति)

जैसा सोचें वैसा ही हम, वचन, क्रिया में करें सदा।
नहीं छुपाएँ अपराधों को, धर्म-मार्ग से चलें सदा।।
ऐसा करने वाला भवि वह, आर्जव-धर्मी कहलाता।
रहता सबका विश्वासी वह, उत्तम-कीर्ति को पाता।।28।।

4. उत्तम-शौच-धर्म-वर्णन

(मन की शुचिता में ही सर्व शुचिता)

समता जल पा संतोषी बन, महा-लोभ को जो धोता।
तजे गृद्धि भोजन की प्राणी, शौच-धर्म-सह तब होता।।
मन की शुचिता से मानव का, तन भी शुचिता को पाता।
मात्र नहीं तन की शुचिता से, मगरमच्छ वह तिर पाता।।29।।

(पापों का मूल लोभ)

लोभ जगत् में बड़ा शत्रु है, और खजाना पापों का।
अगर नहीं छोड़ोगे इसको, नहीं ठिकाना साँसों का।।
लोभी कौरव चले गये वे, वैभव के पीछे लड़ते।
महा-तपस्वी पाण्डव देखो, धर्म नहीं छोड़ा मरते।।30।।

(पवित्र-मन में ग्लानि का अभाव)

मानव धर्म से ग्लानि करता, धर्म-मार्ग को तजता है।
शरीर आदि जो अशुचिमय हैं, प्रेम उसी से करता है।।
धन्य रहा उद्दायन राजा, जिसने ग्लानि जीती थी।
देवों से भी पूज्य हुआ था, जिसे धर्म से प्रीती थी।।31।।

(तन मात्र की शुचिता में आत्म-शुचिता नहीं)

गंगा, सागर सभी में अशुचि, इस तन को है साफ किया।
नहीं हुआ है पवित्र आतम, और राग में वास किया।।
धर्म-भाव से ग्लानि छोड़ो, लोभ-पाप को त्यागो तुम।
उत्तम-शुचिता बिन न जग में, है संतोष सुनो आतम।।32।।

(लोभातिरेक का कड़वा फल)

प्रकर्ष-लोभी बहु-आरम्भी, नरक-आयु का बंध करे।
अल्पारम्भी, अल्प-परिग्रही, मनुष्यगति का बंध करे।।
भरता नहीं समुद्र कभी भी, सहस्र नदियाँ मिलकर भी।
भरे नहीं वह मशान-भूमि, लाखों शव जलने पर भी।।33।।

(तृष्णा की खाई की पूर्ती असम्भव)

जन्म-जन्म से तरह-तरह के, भोज्य सभी वे खाये हैं।
नहीं अभी तक पेट भरा है, खाली ही रह पाये हैं।।
इसी तरह तृष्णा की खाई, नहीं पूर्ण भर पाई है।
लोभ छोड़ संतोष गहा जब, उसने मुक्ति पायी है।।34।।

(धर्म फीका क्यों लगता?)

भव-विषयों की वाँछा तज मुनि, भोग रोग की जड़ मानें।
कर्म-बंध में कारण ये हैं, नश्वर सुख जिनमें जानें।।
मुख हो कडुवा तभी देख लो, मीठा भी कडुवा लगता।
राग-भाव व कषाय हो जब, धर्म सदा फीका लगता।।35।।

(भव-भटकन के कारण भोग)

भव-सुख भोगे कर्म संजोये, विधि से गतियों में जाये।
गतियों में तन इन्द्रिय धारे, अक्ष-विषय में फँस जाये।।

विषय-राग से कर्म-बंध हो, फिर गतियों में भटकाये।
वैरागी बन जाये तब फिर, ना भव-वन में अटकाये।।36।।

(सर्व पापों का बाप लोभ)

सब पापों का बाप समझ लो, लोभ सदा दुःख उपजाता।
कभी लोभ वश देखो मानव, मक्खीचूस कहा जाता।।
श्वा वह स्वर्णों से सज जाए, तो भी विष्ठा पर जाए।
लोभी वह श्रीमान देख लो, अशुचि कीड़ा बन जाए।।37।।

(लोभातिरेक से पुण्य का नाश व)

(पुण्यानुबन्धि पुण्य से रक्षा)

लोभी की लालच ही जिसके, मन को करती मैली है।
अमृत जैसा पुण्य नाश हो, भरे पाप की थैली है।।
माया, मिथ्या, निदान से वह, नहीं धर्म शुभ-पुण्य भरे।
पुण्यानुबन्धि पुण्य साथ दे, समकित-सह वह धन्य करे।।38।।

5. उत्तम-सत्य-धर्म-वर्णन

(सज्जनों से हितकर वचन कहें)

सज्जन लोगों के आगे शुभ, हितकर वचनों को कहना।
भव दुःख हरण वचन से नित ही, सत्य धर्म में रत रहना।।
सत्यघोष-सम असत्य कहकर, ना है वैभव को हरना।
नहीं सत्य में धोखा करना, धर्म-भाव से भव तरना।।39।।

(मौन है जिनवर-सम वृत्ति)

अप्रिय कटुक कठोर शब्द जो, निश-दिन हैं बोला करते।
पर निंदा अरु चुगली से भी, सत्य-धर्म भूला करते।।

आतम ऐसा सत्य न बोलो, जिससे हिंसा होती है।
मौन रहें तो सबसे अच्छा, जिनवर-सम यह वृत्ति है।।40।।

(असत्य छुपता नहीं)

सत्यघोष वा राजा वसु ने, असत्य-पथ को अपनाया।
छुपा नहीं वह असत्य उनका, दुर्गति-फल उनने पाया।।
पर वस्तु, को हरता प्राणी, सत्य-धर्म को तजता है।
असत्य छोड़े सत्य-धर्म से, भव-भव में सुख भजता है।।41।।

(असत्य का फल दुर्गति)

राजा वसु को देखो जिसने, पर्वत का था पक्ष लिया।
'अज' का अर्थ किया था बकरा, मग हिंसा का खोल दिया।।
असत्य-मार्गी पाप-भार से, सिंहासन-सह नरक गया।
ऐसे मिथ्या-वच से जिसका, मानव-जीवन व्यर्थ गया।।42।।

(सत्य का निर्दोष पालन कैसे?)

सत्य-धर्म का पालन करने, क्रोध सदा ही त्याग करें।
लोभ-भाव को तजें सत्य में, भय का भी परिहार करें।।
नहीं हास्य में रमते हैं जो, वहीं सत्य-पालन होता।
नहीं कषायें जागे तब ही, शुभ-ध्यानों में भवि खोता।।43।।

(निर्लोभता में सत्य की रक्षा)

नहीं मान प्रतिष्ठा के जो, लोभी बनते कभी जहाँ।
उन्हें असत्य रुचे न देखो, रुचता उनको धर्म वहाँ।।
किसी तरह न हानि-लाभ में, सत्य-मार्ग को छोड़ें वे।
जैन-धर्म की प्रभावना में, अपने मन को जोड़ें वे।।44।।

(सत्वादियों की शक्ति परीक्षा)

हजार लोगों से भी ज्यादा, एक सुधी में शक्ति रहे।
हजार सुधियों से भी ज्यादा, एक साधु में शक्ति रहे।।
जिस सत्वादी का मानस वह, शुद्ध-पवित्र कहा जाता ।
ऐसा सुधी व साधुजन का, जीवन सबको है भाता।।45।।

(साधु की वाणी भ्रम दूर करे)

जैसे चन्द्रमणी गंगाजल, चंदन शीतल कहलाता।
मात्र वैषयिक सुख को देता, नहीं धर्म का सुख लाता।।
समीचीन साधु की वाणी, सत्य व साधु वचन कहे।
शीतल होती चन्द्र आदि से, सारे भ्रम को दूर करे।।46।।

(सत्वादी की सदा रक्षा)

जाय जहाँ पर सत्-मार्गी निज, रक्षा को वह पाता है।
सभी अपरिचित साथी बनते, उनसे सेवा पाता है।।
जंगल व परदेशों में भी, जन-जन को वह भाता है।
सत्य-धर्म से जन-जन को वह, उत्तम-गति ले जाता है।।47।।

(सन्मार्ग का फल)

सत्य-मार्ग की सदा जीत हो, सुखी बने, जग-विश्वासी।
सर्व-लोक में होय प्रशंसित, और स्वर्ग का हो वासी।।
सभी तरह के व्रत, संयम में, जब उत्साहित होता है।
नर हो काटे सभी कर्म वह, शिव का भागी होता है।।48।।

6. उत्तम-संयम-धर्म-वर्णन

(संयम रूपी नौका से मोक्ष महल)

संयम-रूपी नौका भव से, सबको पार कराती है।
बैठें इसमें बड़े भाव से, मोक्ष-महल ले जाती है।।

पंचेन्द्रिय के दास बनें जो, कभी न संयम रख पाते।
जब छोड़ें उनके विषयों को, तभी साधु सुख को पाते।।49।।

(इन्द्रियों का नियंत्रण संयम है)

सम्यक्ता से अक्ष-विषय का, होय नियन्त्रण संयम है।
पंच-समितियाँ तीन-गुप्तियाँ, धारण करना शुभ-यम है।।
सभी कषायें जीतें मुनिवर, रत्नत्रय पालें निर्दोष।
व्रत-विशुद्धि बढ़ती है नित ही, बनें श्रेष्ठ गुणों के कोष।।50।।

(निश्चय और व्यवहार संयम)

निश्चय-संयम पालन में मुनि, क्रिया रहित ध्यानों में रत।
व्यवहारी संयमी जब साधु, पाँच-समिति धर, पाप-विरत।।
अपहृत-संयम में वे मुनिवर, उपकरणों को साथ रखें।
करें उपेक्षा-संयम पालन, नहीं उपकरण साथ रखें।।51।।

(संयम और असंयम का प्रतिफल)

इन्द्रिय वा प्राणी संयम का, पालन जब मुनिजन करते।
मन-वानर को वश में रखकर, सब हिंसा से वे बचते।।
नहीं रहे जीवन में संयम, पाप-घड़ा भर जाता है।
कभी फूटता इक दिन वह तो, भव-भव में भटकाता है।।52।।

(मन का संयम ही सर्वोच्च है)

धर्मी-मानव मन का संयम, प्रथम पूर्ण अपनाता है।
सब पापों की जड़ वह मन है, भव में भ्रमण कराता है।।
तन्दुल जैसे जहाँ मच्छ ने, हिंसा का था भाव किया।
भाव-मात्र के महापाप से, नरकों का दुःख प्राप्त किया।।53।।

(आत्मा पर संयम-लगाम की अनिवार्यता)

लगाम लगते ही, घोड़ा ज्यों, झट काबू में आ जाता।
जहाँ कहीं भी फिर ले जाओ, नहीं मार्ग में अटकाता।।
संयम-रूपी लगाम से जो, महाव्रती हैं बन जाते।
ऐसे संयमधारी मुनिवर, उत्तम-शिव-पद वे पाते।।54।।

(संयम के विभिन्न स्थान)

खाते, पीते, उठते, बैठें, बोलें, चलते इन सब में।
नहीं असंयम रखते ज्ञानी, जागृत रहते इन सबमें।।
मन में ना विषयों का चिंतन, न कहते वे पाप वचन।
तन से सीमित करें प्रवृत्ति, जिनवर के हैं यही वचन।।55।।

(पंचेन्द्रियों के असंयम का फल)

स्पर्शन-वश हाथी देखो, गड्ढे में गिर जाता है।
रसना-वश वह मच्छ देख लो, वंशी में फँस जाता है।।
घ्राण-वशी वह भ्रमर फूल में, अन्दर ही मर जाता है।
चक्षु-वश वह मरे पतंगा, अग्नि में जल जाता है।।56।।

(असंयम दुःख का कारण है)

श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत हो, हिरण जाल में फँस मरता।
पंचेन्द्रिय के वश से मानव, फिर क्यों ना है दुःख सहता।।
अतः सदा हम इन्द्रिय संयम, पालें दुख से दूर रहें।
जीव-बचाने प्राणी-संयम, पा सद्गति सुख पूर लहें।।57।।

(संयम से केवलज्ञान)

देखो गजकुमार स्वामी ने, संयम उत्तम पाला था।
नहीं डिगे थे मुनिव्रत से वे, कर्म-शत्रु हर डाला था।।

आग रखी थी, जिनके सिर पर, उष्ण-परीषह सहकर वे।
केवलज्ञानी बने तथा शिव, पहुँचे शुभ-गुण पाकर वे।।58।।

7. उत्तम-तप-धर्म-वर्णन

(प्रशंसनीय है निःस्वार्थ तपस्या)

कर्मों का क्षय करने योगी, तप जीवन में लाते हैं।
दर्शन ज्ञान तपों से निर्मल, बनते सुखद सुहाते हैं।।
नहीं रखें जो भव-सुख वाञ्छा, पद की आशा नहीं जहाँ।
जगत-प्रशंसित तप है जिनका, शिव मिलता है शीघ्र जहाँ।।59।।

(घोर-तप से शान्ति की वर्षा)

प्रखर-सूर्य से ग्रीष्म-काल में, धरती जितनी तप जाती।
उतनी ही फिर वर्षा होती, सब जीवों को सुख लाती।।
मोक्ष-मार्ग में रमते योगी, घोर-तपश्चर्या करते।
महा-शांति की वर्षा पा वे, तृप्ती का अनुभव करते।।60।।

(समताधारी जगत्-पूज्य होते हैं।)

मैत्री रहे सभी जीवों पर, बैर भाव न कभी वहाँ।
सर्व दुःखों में सहनशीलता, परिषह-जय भी रही जहाँ।।
समता रखकर कठिन-कठिन तप, तपते योगी, कहलाते।
जगत्-पूज्य तप-गुण के धामी, हम सबको वे मन भाते।।61।।

(बारह तपों से संवर और निर्जरा)

इच्छाओं का निरोध करना, समीचीन तप कहलाता।
अन्तरंग, बहिरंग भेद से, मुनियों के धारा जाता।।
बारह तप ये तपते जब मुनि, पाप-बंध से दूर रहें।
अशुभ-कर्म का संवर कर वे, कर्म-रिपु को शीघ्र हरें।।62।।

(बाह्य-तपों की साधना)

चतुराहार तजें मुनिवर जब, अनशन-तप वह कहलाता।
थोड़ा खाकर समता रखते, अवमौदर्य कहा जाता।।
नियम धारते विविध अशन के, वृत्ति-परिसंख्यानी वे।
षट्-रस त्यागें, जिनवाणी का, रस लेते हैं ज्ञानी वे।।63।।

(सोत्साह तपस्या)

रहें नित्य एकान्तवास में, शय्यासन को वहाँ करें।
देते क्लेश सदा काया को, नहीं खेद कुछ किया करें।।
दोषों का वे शोधन करते, सदा विनीत बन रहते हैं।
वैयावृत्ति साधुजनों की, करते श्रुत में रमते हैं।।64।।

(आत्म-ध्यान में स्वाधीनता)

कायोत्सर्ग सदा करते यति, शुभ-ध्यानों में लीन रहें।
आर्त्त, रौद्र उन ध्यानों को तज, सदैव वे स्वाधीन रहें।।
जैसे दूध तपे फिर उसमें, जामन भी डाला जाता।
भिन्न-भिन्न हो दही बने फिर, मथा भी उसको तब जाता।।65।।

(तप से भेद-विज्ञान)

मथने पर वह दही जहाँ नव-नीत अवस्था पाता है।
जब नवनीत आग में तपता, शुद्ध अवस्था पाता है।।
वैसे ही वह योगी देखो, तप से भेदज्ञान पाता।
व्यवहारी से निश्चय में जा, अर्हत्, सिद्ध फिर बन जाता।।66।।

(ध्यानाग्नि से आत्मशुद्धि और मोक्ष)

तप रूपी भट्टी में ज्योंही, आत्म रूप सोना डालो।
ध्यान रूप अग्नि से उसका, कर्म मैल वह धो डालो।।

नहीं रहेगा मैल वहाँ पर, शुद्ध पूर्ण बन जायेगा।
उत्तम-तप ये तपकर प्राणी, नहीं जगत् में आयेगा।।67।।

8. उत्तम-त्याग धर्म-वर्णन

(संयोगज पर-पदार्थों के त्याग में संकोच व्यर्थ)

जितने भी पर पदार्थ सारे, इक दिन छूटें हम सबसे।
क्योंकि वे सब संयोगी हैं, अतः वियोगी हों हमसे।।
ऐसे संयोगी को तजते, पर का ही वह त्याग रहा।
नहीं हमारे गुण वे छूटें, ना उनका है त्याग रहा।।68।।

(गृहि और मुनि का त्याग)

गृहि के जैसे चार धर्म में, सत्पात्रों को दान कहा।
मुनि के वैसे त्याग-धर्म में, ज्ञान आदि का दान रहा।।
गृहि वा मुनि का यही त्याग जो, धर्म-ध्यान में आता है।
पुण्यार्जन कर कर्म नाशकर, स्वर्ग-मोक्ष सुख दाता है।।69।।

(मोक्षमार्ग का सुखानुभव क्यों नहीं मिलता?)

पाँच तरह के मिथ्यात्वों का, विषय-भोग कषायों का।
नहीं त्याग करता जो मानव, कर्त्ता बनता पापों का।।
आर्त्त-रौद्र अशुभ ध्यानों में, निश-दिन ही वह लीन रहे।
मोक्षमार्ग का सुखानुभव वह, क्षण भर भी न प्राप्त करे।।70।।

(वैषयिक-सुख में पाप-बंध)

अशुभ-कर्म का योग मिले जब, उत्तम-गुण दुर्गुण बनते।
अतः कर्म की करें निर्जरा, इक दिन सब पावन बनते।।
पुण्य-कर्म के कारण वैभव-मिलता मानव सुख भोगे।
ऐसे इन्द्रिय सुख से आतम, पाप-बन्ध से दुःख भोगे।।71।।

(सिद्धों का सुख किसे मिलता?)

जो धर्मी जन कर्माश्रित इन, इन्द्रिय-सुख का त्याग करें।
वे ही इक दिन सिद्धों के उस, उत्तम-सुख को प्राप्त करें।।
विषय-राग की बाह्य वस्तुएँ, पाप-बीज-सम रहीं सदा।
इनको त्यागें पुरुषार्थी बन, नहीं निकम्में बने कदा।।72।।

(शुद्धात्मा का अनुभव कैसे?)

बिना विषय त्याग कर अनुभव, शुद्धातम का कैसे हो?
विषय-त्याग कर साधु बने बिन, वीतराग भी कैसे हो?
विषय-राग-सह अशुद्धात्म का, अनुभव होता रहता है।
बिना श्रमण व वीतराग बन, जीव शुद्ध ना होता है।।73।।

(विराग-भावों का परिणाम)

जम्बू-स्वामी ने रत्नों के, वैभव में न राग किया।
विवाह होने पर न रानियाँ, देखीं, वा सब त्याग किया।।
जिनके विराग-भावों को लख, विद्युत आदिक चोर जहाँ।
सब पापों से मुक्त हुए व, बने साधु, हुई भोर वहाँ।।74।।

(चोरों की दीक्षा कैसे?)

चोरों ने पहले दीक्षा ली, फिर जम्बूस्वामी ने ली।
जिनसे शिक्षा ली चोरों ने, उनने दीक्षा पीछे ली।।
क्योंकि जिनको बहु-पापों का, प्रक्षालन निज करना था।
अतः त्याग में आगे जाकर, संयम धारण करना था।।75।।

(भाग्यवान हैं वैरागी-जन)

भाग्यवान वे वैरागी जन, जो विषयों का त्याग करें।
द्रव्य, क्षेत्र, सु-काल, भाव पा, अशुद्धात्म को शुद्ध करें।।

धन्य रहे कुलभूषणादि जो, त्यागी बन वैराग्य लिया।
आत्म-शुद्ध कर बने केवली, पंचम-गति को प्राप्त किया।।76।।

9. उत्तम-आकिञ्चन्य-धर्म-वर्णन

(आकिञ्चन्य में चिन्ता का अभाव)

सकल-ग्रन्थ का त्याग जहाँ हो, वह शुभ आकिञ्चन्य रहा।
जिनका सुख, दुख जनित भाव में, नित सम-भाव सु धन्य रहा।।
सभी तरह की चिन्ताओं से, जिनका मन वह दूर रहे।
संयम, त्याग, तपों, ध्यानों में, जिनका मन संपूर्ण रहे।।77।।

(आत्मसाधना में कर्मबंध से रक्षा)

अंतरंग, बहिरंग संग ये, भव-वन में अटकाते हैं।
समता के जो धारक मुनिजन, छोड़ सभी सुख पाते हैं।।
किञ्चित मात्र संग को भी वे, नहीं पास में रखते हैं।
आत्म-साधना में रत रहकर, कर्म-बंध से बचते हैं।।78।।

(आत्मा का वास्तविक स्वरूप)

मैं एकाकी शुद्धस्वरूपी, दर्श, ज्ञानमय रूप नहीं।
न परमाणु-सम कुछ वस्तु, शरीरादि निज रूप नहीं।।
मैं रस, गंध सभी शब्दों से, दूर रहा सुख-धाम रहा।
न संस्थान न लिङ्ग हमारा, निज में ही आराम रहा।।79।।

(बाहुबली का सद्विचार)

(लय-परिवर्तन)

बाहुबली नित कहते थे वे, भरतेश से संदेश यह ।
मेरी तो मेरी रही जँह- संपत्; करो न क्लेश यह।।

तेरी तो तेरी रही जँह, संपत् नहीं मेरी कदा।
मुझे पिता से मिली संपदा, नहीं न्याय भूलूँ कदा।।80।।

(भरतेश का असद्-विचार)

भरतेश कहते थे सदा ही, मेरी सही मेरी रही।
लो! बन गया हूँ चक्रवर्ती, तेरी सभी मेरी रही।।
बाहुबली हि कहते सदा थे, कि बैर नहीं है भ्रात में।
तुम चक्रवर्ती की कहो तो, अब ही लडूँ दिन-रात मैं।।81।।

(स्वार्थी-संसार लख-वैराग्य)

वे कर लिए थे सब युद्ध अरु, बड़े-भाई को अविजित किया ।
अभिमान के हि वशीभूत हो, लघु भ्रात से बदला लिया।।
चक्र-सुदर्शन न चला जिन पर, वैराग्य का बाना लिया।
मेरी भी सु-तेरी रही कह, ध्यान आतम में किया।।82।।

(अकिञ्चन्य हुये बाहुबली, तब केवलज्ञान)

सु-ध्यान करते वर्ष बीता, पर ज्ञान-केवल न हुआ।
तब चक्रवर्ती हि भाव-भक्ति- सह चरण में आ नत हुआ।।
कुछ ना रहा था क्लेश मन में, न तेरा मेरा भय रहा।
आकिञ्चन्य बन बाहुबलि ने, सुज्ञानकेवल शुभ लहा।।83।।

(उत्तम-ज्ञानी का लक्षण)

(पुनः वही लय)

बाल मात्र-सम संग परिग्रह, पापों का जो है कारण।
राग-भाव को पैदा करके, दुख का करता संपादन।।
पर-पदार्थ से ममता छोड़े, वह कहलाता है ज्ञानी।
व्रत आकिञ्चन होता उसके, फिर वह बनता है ध्यानी।।84।।

(दिगम्बर की परिभाषा)

दिशा दशों हि अम्बर जिनके, अतः दिगम्बर कहते हैं।
मान शिला, लकड़ी को शय्या, शयन उसी पर करते हैं।।
हाँथ हि तकिया व्योम रजाई, नहीं परिग्रह रखते हैं।
ऐसे समता-धारी मुनि को, शत-शत वंदन करते हैं।।85।।

10. उत्तम-ब्रह्मचर्य-धर्म-वर्णन

(अठारह हजार शीलों के स्वामी)

परम-ब्रह्म जो निज-आतम है, उसमें यतिजन रमते हैं।
आत्म-तत्व के अधिकारी वे, शील-गुणों से सजते हैं।।
शील अठारह हजार जिनके, पालक वे मुनिजन होते।
निर्विकार हो निर्भयता से, पाप-मैल को वे धोते।।86।।

(ब्रह्मचर्य में समता-रस का पान)

आत्म-ब्रह्म में चर्या कर यति, समता रस का पान करें।
विषय-सुखों के त्यागी मुनिवर, धर्म, शुक्ल वे ध्यान धरें।।
जिनका पावन उत्तम जीवन, सबके मन का मैल हरे।
अतः जगत् सेवाकर शुभ-गुण, पाने जय-जयकार करे।।87।।

(सर्वोत्तम आत्मशासक ब्रह्मचारी)

राजाओं में जैसे चक्री, बड़ा श्रेष्ठ माना जाता।
वैसे व्रतराजों का राजा, ब्रह्मचर्य माना जाता।।
स्पर्श, रसना कामेन्द्रिय को, जो वश में है कर लेता।
सर्वोत्तम धर्मी शासक बन, ब्रह्मचर्य को भज लेता।।88।।

(वीर-पुरुष कौन?)

बड़े-बड़े वे वीर पुरुष जो, सेना शत्रु परास्त करें।
कामदेव के चरणों में वे, हार मान मस्तक रख्खें।।
कामदेव के वश में रह वे, नहीं वीर कहलाते हैं।
जित-इन्द्रिय जब बन जाते हैं, तभी वीर कहलाते हैं।।89।।

(शील बिना सुख नहीं)

परमशील का पालन करने, जो कुशील का त्याग करें।
शील बिना सुख नहीं जगत में, ऐसा मन में भाव रखें।।
विजय व विजया असिधारा व्रत, से जग में विख्यात हुए।
शीलवान सुदर्शन श्रावक, देवों से आदरित हुये।।90।।

(शीलवान सुदर्शन की दृढ़ता)

अतिशय-सुन्दर सेठ-सुदर्शन, से रानी ने मोह किया।
राज-महल में छल से लाकर, घोर महा उपसर्ग किया।।
नहीं चलित कर पाई उनको, नहीं शील में दोष हुआ।
नृप ने शूली पर चढ़वाया, सुर-सिंहासन वहाँ हुआ।।91।।

(शीलवन्त हुआ देवों से पूज्य)

साधु बने जब सेठ-सुदर्शन, वेश्या का उपसर्ग हुआ।
अडिग रहे थे ब्रह्मचर्य में, ना कुशील संसर्ग हुआ।।
उपसर्गों को समता से सह, घाति-कर्म का नाश किया।
देवों से भी पूजा पाकर, फिर शिव-पद में वास किया।।92।।

(रावण का शील)

रावण ने यह नियम लिया था, ना मैं दूजी महिला को।
जो मुझको ना चाहेगी तब, नहीं वरूँ उस महिला को।।

लेकिन इक ऐसी नारी थी, जिसे न रावण भाया था।
सति-सीता थी पतिव्रता जो, अतः नहीं वर पाया था।।93।।

(शील का फल तीर्थंकर)

ऐसे छोटे शीलवान उस, रावण ने निज-जीवन में।
अर्हत् सु-भक्ति से भी देखो, पुण्य-भाव लाया मन में।।
तीर्थंकर बनकर वह रावण, इक दिन भू-पर आवेगा।
सीता धारेगी गणधर-पद, दिव्य-ध्वनि, जग पावेगा।।94।।

(सति-सीता की परीक्षा)

अग्नि-कुण्ड में शील-धर्म की, परीक्षा श्री राम ने ली।
अग्नि-कुण्ड में नीर हुआ था, सीता मति थी ना मैली।।
स्वर्ग-लोक जा फिर आ सति ने, साधु-राम को ललचाया।
नहीं डिगे सब बाधाओं में, केवलज्ञानी-पन पाया।।95।।

(शीलवन्तों के अतिशय)

जैसे सीता-प्रति देवों ने, जल में कमल रचाया था।
सेठ सुदर्शन को शूली का, सिंहासन बनवाया था।।
विजय व विजया से चँदोवा, धवलपूर्ण बनाया था।
धन्य शील के धारी जिनका, देवों ने गुण गाया था।।96।।

★★★

(दसलक्षण-धर्म का महत्व एवं प्रेरणा)

धर्म कहे जो दशलक्षण ये, परमपूज्य माने जाते।
जो भी इनका पालन करते, नहीं जगत् में भरमाते।।
इस जीवन को नश्वर समझो, इसका नहीं भरोसा है।
धर्म-पालना तुम चाहो तो, अभी इसी पल मौका है।।97।।

★★★

कितने भव हैं बीत गये जो, नहीं धरम का ध्यान किया।
विषयों को ही अच्छा माना, उनका ही सम्मान किया।।
धर्मी बनकर हमें जगत् में, नरभव सफल बनाना है।
झूठे सब वैभव को तजकर, आत्मनिधि को पाना है।।98।।

★★★

दसलक्षण जो उत्तम होते, उत्तम ही गति के कारण।
उत्तम-उत्तम सुख को देते, उत्तम ही बनता जीवन।।
उत्तम-उत्तम ''विद्या'' पाने, धर्मोत्तम मैं अपनाऊँ।
उत्तम ''आर्जव'' मैं बन करके, उत्तम-मोक्ष-सौख्य पाऊँ।।99।।

(क्षमावाणी कैसे मनायें?)

क्षमा-भाव का पर्व मनाने, पहले सबको क्षमा करें।
फिर हम माँगे क्षमा सभी से, मन में निर्मल-भाव धरें।।
क्षमा नहीं जो करे शत्रु को, नहीं क्षमा है कहलाती।
कषाय-भावना इस जगत् में, वैरभाव को उपजाती ।।100।।

★★★

क्षमा-मात्र कहने से प्राणी, नहीं क्षमा-वाणी होती।
नहीं रखेंगे बैर कभी हम, यही धर्म की है रीती।।
सारे जग में प्रेम बढ़े नित, नहीं किसी में भेद रहे।
सुखी रहें सब धर्मी-जन ये, नहीं किसी को खेद रहे।।101।।

(अन्तिम-भावना और प्रशस्ति)

दोहा :

गुरुवर के सत्संग से, बड़े प्रभावन आप।
आर्जव-मय शुभ-धर्म से, भगवन की दें जाप।।102।।

★★★

सागर-सम गहराई में, उतरें यतिजन लोग।
रचित महामुनि आत्म में, पूजें उनको लोग।।103।।

★★★

धर्म सदा मंगल करे, मंगल बनते काज।
भावना जिन धर्म की, देती सुख यह राज।।104।।

★★★

शतक वर्ष ये क्या रहे, कोटि जन्म के पाप।
जय करते भगवान की, मिटते आपो आप।।105।।

★★★

वर्ष वीर निर्वाण का, पच्चीस सौ उन्तीस।
हुई काव्य की पूर्णता, पढ़ें बने जगदीश।।106।।

★★★

मिला सु कोपरगाँव में, दो दसलक्षण योग।
'धर्म-भावना शतक' यह, काव्य बना संयोग।।107।।

★★★

लिखी धर्म यह भावना, भूल रही हो कोय।
ज्ञानी पढ़ें सुधार कर, गुण-अर्जन शिव जोय।।108।।

★★★

दशलक्षण को धारकर, श्रमण बनें सब लोग।
भव-सागर से पारकर, पहुँचें मुक्ति लोग।।109।।

अध्यात्म समयोदय-काव्य

(समयसार का संक्षिप्त सार)

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज

मंगलाचरण

जिन-सिद्धों को हो नमन, दर्श, ज्ञान, व्रत-धार।
कुन्दकुन्दाचार्य ने, कहा समय का सार॥1॥

❃ ❃ ❃

अचल अमल हैं सिद्ध वे, अतुल-गुणाधिक धार।
अनुपम-सुख में लीन जो, शुद्ध-समय का सार॥2॥

❃ ❃ ❃

रत्नत्रय में लीन हो, स्व हि समय जो सार।
पर में होता पर-समय, यही समय का सार॥3॥

❃ ❃ ❃

रत्नत्रय जहँ राग है, वहाँ भेद-व्यवहार।
रत्नत्रय की एकता, जहाँ समय का सार॥4॥

❃ ❃ ❃

दर्श, ज्ञान, व्रत-भावना, आत्म-रूप स्वीकार।
सर्व-दुखों से मुक्त हो, यही समय का सार॥5॥

❃ ❃ ❃

नव-पदार्थ सम्यक्त्व वे, हों, अबन्ध चित्-धार।
विशुद्ध-नय से जानते, यही समय का सार॥6॥

❃ ❃ ❃

धन–इच्छुक नृप चाहते, चलें राज–अनुसार।
जीव–राज को जानकर, लीन, समय का सार ॥ 7 ॥

❋ ❋ ❋

कर्म तथा नोकर्म में, मैं– मम यह ममकार।
अज्ञ–पना उसमें पले, कहे समय का सार ॥ 8 ॥

❋ ❋ ❋

अजीव में निज–बुद्धि हो, बंध होय, संसार।
निजात्म के उपयोग से, मोक्ष, समय का सार ॥ 9 ॥

❋ ❋ ❋

निश्चय–नय निज–भाव का,– कर्त्ता जीव विचार।
जड़–कर्त्ता व्यवहार से, निजी समय का सार ॥ 10 ॥

❋ ❋ ❋

है त्रिकाल पर–द्रव्य मम, मूढ़ातम स्वीकार।
पर–पदार्थ में मोह–बिन, साधु समय का सार ॥ 11 ॥

❋ ❋ ❋

जड़ अरु जन अपना कहे, अज्ञ–पने को धार।
जीव सदा उपयोग–मय, धार, समय का सार ॥ 12 ॥

❋ ❋ ❋

तन–आतम यदि एक न, जिन–तन–थुदि बेकार।
तन–थुदि यह व्यवहार है, स्वस्थ, समय का सार ॥ 13 ॥

❋ ❋ ❋

ज्ञानादिक-गुण-स्तवन, निश्चय-थुदि स्वीकार।
नगरादिक न नृप कहो, स्वगुण समय का सार॥ 14॥

✵ ✵ ✵

इन्द्रिय-आदिक जीतकर, जिन होता सुखकार।
कर्म-बंध को क्षीणकर, पूर्ण, समय का सार॥ 15॥

✵ ✵ ✵

पर-पदार्थ को छोड़ना, कहते प्रत्याख्यान।
पर-पदार्थ सब भिन्न जब, समयसार का ज्ञान॥ 16॥

✵ ✵ ✵

एक, शुद्ध हि आत्मा, दर्श, अरूपी, ज्ञान।
ना परमाणु-मात्र मम, समयसार पहचान॥ 17॥

✵ ✵ ✵

पुद्गल-मय जो कर्म है, आतम से पर जान।
कर्मोदय फल दुःख दे, समयसार सुख मान॥ 18॥

✵ ✵ ✵

शुद्ध-जीव रस आदि बिन, दर्श, ज्ञान-मय जान।
निज-अमूर्त संस्थान न, समयसार-श्रद्धान॥ 19॥

✵ ✵ ✵

वर्णादिक पुद्गल रहे, अन्य; आत्म से जान।
संयोगज हैं स्वभाव न, समयसार-व्याख्यान॥ 20॥

✵ ✵ ✵

आतम में व्यवहार से, वर्णादिक पहचान।
नीर–क्षीर–सम एक भी, समयसार में जान ॥ 21 ॥

❋ ❋ ❋

वर्णादिक यदि जीव हैं, जड़; चेतन हो जान।
लक्षण से वे भिन्न हैं, समयसार पहचान ॥ 22 ॥

❋ ❋ ❋

जीव–समास जु जीव में, अशुद्ध–नय से जान।
गुणस्थान भी जीव ना, समयसार की शान ॥ 23 ॥

❋ ❋ ❋

जहँ निज, आस्रव–भाव में, नहीं भिन्नता जान।
क्रोधादि–कर बंध हो, समयसार का ज्ञान ॥ 24 ॥

❋ ❋ ❋

आस्रव, निज में भिन्नता, जाने; बंध न जान।
आस्रव से ग्लानि करें, समयसार हित जान ॥ 25 ॥

❋ ❋ ❋

मैं एकाकी शुद्ध हूँ, रत्नत्रय–सह मान।
निज से क्रोधादिक तजूँ, समयसार पहचान ॥ 26 ॥

❋ ❋ ❋

निज में कर्म–निबद्ध जो, नित्य,शरण न जान।
दुख है, दुख को जो फले, समयसार दे ज्ञान ॥ 27 ॥

❋ ❋ ❋

कर्म व न नोकर्म का, कर्त्ता वा परिणाम।
जीव जानता–मात्र है, समयसार वह नाम ॥ 28 ॥

❋ ❋ ❋

निश्चय से पर–द्रव्य का, ग्रहण–मेल न जान।
निमित्त–नैमित्तिक कहे, समयसार का ज्ञान ॥ 29 ॥

❋ ❋ ❋

निश्चय से यह आत्मा, निज का कर्त्ता होय।
भोक्ता भी निज का रहे, समयसार–मय होय ॥ 30 ॥

❋ ❋ ❋

आत्म व पुद्गल का कहो, आत्म जु कर्त्ता होय।
द्वि–क्रियावादी कहा, समयसार फिर खोय ॥ 31 ॥

❋ ❋ ❋

आत्म व पुद्गल के कहे, परिणामों को एक–।
आत्मा–कर्त्ता है रहा, समय गहे न नेक ॥ 32 ॥

❋ ❋ ❋

जड़–कर्मों का हो उदय, सुख, दुख–मय हो पूर।
कर्म–हेतु से भोगता, समयसार फिर दूर ॥ 33 ॥

❋ ❋ ❋

पर का कर्त्ता मानता, अज्ञ–आत्म वह मान।
पर निज, निज पर न करे, समयसार संज्ञान ॥ 34 ॥

❋ ❋ ❋

मैं; क्रोधादि मान्यता, बन्धक की पहचान।
मोह-तजे, निश्चय मिले, समयसार का ध्यान ॥ 35 ॥

❋ ❋ ❋

घट-पट द्रव्यों को करे, कर्त्ता वह कहलाय।
तन्मय होता जो नहीं, समयसार हिय लाय ॥ 36 ॥

❋ ❋ ❋

शुभ व अशुभ हि भाव-कर, भाव-कर्मि हो जाय।
भोक्ता वह उनका रहे, समयसार-विसराय ॥ 37 ॥

❋ ❋ ❋

कर्त्ता न यह आत्मा, कर्म-गुणों के साथ।
रहे अकर्त्ता अन्य का, समयसार परमार्थ ॥ 38 ॥

❋ ❋ ❋

दोष, गुणों को नृप करे, नय; व्यवहार कहाय।
व्यवहारी निज-बाह्य है, समयसार बतलाय ॥ 39 ॥

❋ ❋ ❋

ज्ञान, दर्श-सम क्रोध ना, आतम का कहलाय।
एक मानते क्रोध को, समयसार कब भाय ॥ 40 ॥

❋ ❋ ❋

निमित्त-नैमित्तिक रहा, कर्म-बंध जहँ जान।
फले कर्म फिर बंध हो, समयसार पहचान ॥ 41 ॥

❋ ❋ ❋

आग जहाँ घृत है जले, जलता घृत फिर आग।
राग मिटे हि अबंध निज, समयसार निज-पाग ॥ 41 ॥

❋ ❋ ❋

निश्चय-नय से आत्मा, करता ना पर-भाव।
समयसार में लीन हो, पाता वही स्वभाव ॥ 43 ॥

❋ ❋ ❋

अपने ही वह योग को, करता शुद्ध हि जीव।
करता निज-उपयोग भी, समयसार में जीव ॥ 44 ॥

❋ ❋ ❋

ज्ञानी ज्ञान हि भाव को, अज्ञ; अज्ञ ही भाव।
समयसार-मय होय जो, पाता वही स्वभाव ॥ 45 ॥

❋ ❋ ❋

जड़ का हो जो परिणमन; जड़ के द्वारा जान।
शुद्ध हि निश्चय जानता, समयसार पहचान ॥ 46 ॥

❋ ❋ ❋

अन्य-द्रव्य अरु भाव का, कर्त्ता आतम जान।
नय व्यवहार हि बोलता, समयसार में जान ॥ 47 ॥

❋ ❋ ❋

स्वर्ण बने कुण्डल जहाँ, कड़ा बने वह लोह।
भाव-शुभाशुभ हों तहत, समयसार कब सोह ॥ 48 ॥

❋ ❋ ❋

स्व हि समय को जानता, नहीं पक्ष स्वीकार।
अनेकान्त के ज्ञान में, समयसार का सार ॥ 49 ॥

❋ ❋ ❋

रागी बंधता कर्म से, मुक्त विरागी जान।
राग–छोड़ना, जिन कहें– सार; समय का ज्ञान ॥ 50 ॥

❋ ❋ ❋

निश्चय से शुद्धात्मा, मुनि, केवली जान।
ज्ञानी निज–पा, मोक्ष को,– पाय; समय की शान ॥ 51 ॥

❋ ❋ ❋

है स्वभाव से आत्मा, ज्ञाता, दृष्टा जान।
कर्म–धूल से है ढका, समयसार अन्जान ॥ 52 ॥

❋ ❋ ❋

तरु से गिरता फल कभी, लगे न तरु पर जान।
कर्म झड़ें फिर न फलें, समय–विज्ञ पहचान ॥ 53 ॥

❋ ❋ ❋

दर्शन, ज्ञान, चरित्र जब, जघन्य रूप हि जान।
बंधक होते कर्म के, समय–दूर तब मान ॥ 54 ॥

❋ ❋ ❋

बाला ना, तरुणी करे-, विकार नर को जान।
विज्ञ न, विधि उस अज्ञ को- बंध; समय में ज्ञान ॥ 55 ॥

❋ ❋ ❋

यथा-पुरुष को भोज्य जो, रस, रुधिरादिक जोय।
पूर्व-बद्ध विधि-राग से, बंध, समय-सुख खोय ॥ 56 ॥

❋ ❋ ❋

आग-तपा सोना जहाँ, स्वर्ण-पना न खोय।
कर्मोदय में विज्ञ भी, समय में न विधि जोय ॥ 57 ॥

❋ ❋ ❋

पर-पदार्थ से मन हटा; होय आत्म का ध्यान।
निज-स्वभाव में कर्म-क्षय, समयरूप सुख मान ॥ 58 ॥

❋ ❋ ❋

वीतराग-समदृष्टि के, नहीं भोग में आश।
भोग रहें; पर निर्जरा, समयसार निज-पास ॥ 59 ॥

❋ ❋ ❋

परमाणु-सम संग में, जिसका होता राग।
पूर्ण-विज्ञ क्यों न रहे, नहीं समय में जाग ॥ 60 ॥

❋ ❋ ❋

राग-भाव वा भोग्य सब, क्षणिक-अवस्था रूप।
इन द्वय में न आश हो, समयसार अनुरूप ॥ 61 ॥

❋ ❋ ❋

विज्ञ संग से हो विरत, संग–आश न पुण्य।
कर्म–संग भी न रहे, समयसार बस; धन्य ॥62॥

❋ ❋ ❋

उदय प्राप्त उस कर्म में, भोग–बुद्धि को छोड़।
आगे हों यह वांछा– नहीं; समय मन–मोड़ ॥63॥

❋ ❋ ❋

सर्व–द्रव्य के मध्य में, विज्ञ; विराग अलिप्त।
समय में न विधि–बंध हो, पंक स्वर्ण न लिप्त ॥64॥

❋ ❋ ❋

सर्व–द्रव्य के मध्य में, अज्ञ सरागी लिप्त।
समय में विधि हि बंध हो, पंक लोह फिर लिप्त ॥65॥

❋ ❋ ❋

नागफणी–जड़ जब मिले, हथिनि तोय, सिन्दूर।
सीसा, अग्नि स्वर्ण हों, समय–धर्म अनुकूल ॥66॥

❋ ❋ ❋

कर्म–कीट रागादि वे, रहे कालिका जान।
रत्नत्रय–औषध मिले, ध्यान समय में मान ॥67॥

❋ ❋ ❋

निकट–भव्य लोहा रहा, योगि तप–धमकाय।
लोहा, स्वर्ण बने, तथा– समय मोक्ष–सुख पाय ॥68॥

❋ ❋ ❋

धन हेतु नृप–सेवता, नृप देता धन भोग।
न सेवे समदृष्टि जो– कर्म, समय सत्–योग॥69॥

❋ ❋ ❋

सद्दृष्टि निःशंक है, अतः न भय हो जान।
मरणादिक ना सप्त–भय, समय निशंकित मान॥70॥

❋ ❋ ❋

कर्म–बंध के हेतु जो, मोहादिक सब भाव।
समय शुभाशुभ–योग तज, बने निशंक स्वभाव॥71॥

❋ ❋ ❋

विधि–फल, सर्व–स्वभाव में, ना मुनि कांक्षा होय।
समय वही निःकांक्ष है, समदर्शन–सुख जोय॥72॥

❋ ❋ ❋

सर्व–वस्तु के धर्म में, नहीं ग्लानि जब होय।
निर्विचिकित्सा–अंग–सह, समयसार–सुख सोह॥73॥

❋ ❋ ❋

कर्म–उदय में मूढ़ता, मोह–तजे निज–राम।
अमूढ़दृष्टि सु–अंग–सह, समय पाय आराम॥74॥

❋ ❋ ❋

सिद्ध–गुणों में लीन हो, विभाव–गुण–गण भूल।
उपगूहन–गुण–धारकर, समयमयी अनुकूल॥75.॥

❋ ❋ ❋

मिथ्यामग से दूर हो, मोक्षमार्ग को पाय।
स्थितिकरण निज-गुण सहित, समय सदा ही भाय ॥ 76 ॥

❋ ❋ ❋

मोक्षमार्ग में जो निरत, तीनों साधु महान।
प्रेम रखे, उनमें बने, - वत्सल-समयी जान ॥ 77 ॥

❋ ❋ ❋

आत्मज्ञान-रथ पर चढ़े, मन-रथ रोके वेग।
जिन-प्रभावना हो, समय,- में समकित संवेग ॥ 78 ॥

❋ ❋ ❋

मात्र चेष्टा से नहीं, होय राग से बंध।
हो विराग निज-ध्यान-मय, रहता समय अबंध ॥ 79 ॥

❋ ❋ ❋

आयु-क्षय से हो मरण, जिनवर का सिद्धांत।
आयु-हरण व देय कहे, होय समय में भ्रान्त ॥ 80 ॥

❋ ❋ ❋

हिंसादि उन पाप का, कर्त्ताकर्त्ता जीव।
यह समझे अज्ञान है, समय-लीन जब जीव ॥ 81 ॥

❋ ❋ ❋

जीव मरे या ना मरे, जहाँ प्रमादी होय।
वहीं पाप का बंध हो, समय दुःख में खोय ॥ 82 ॥

❋ ❋ ❋

हिंसादिक सब पाप हैं, अहिंसादि हि पुण्य।
निजी–समय में लीन जब, नहीं पाप व पुण्य ॥ 83 ॥

❋ ❋ ❋

मिथ्यात्वी, विषयी जहाँ, करे कर्म का बंध।
होता मुक्त समय वही, शिवमग–मयी अबंध ॥ 84 ॥

❋ ❋ ❋

स्व–स्व कर्मों का उदय– हो तब सुख–दुख होयँ।
सुख–दुख–कर्त्ता मानता, समय–अज्ञ तब होय ॥ 85 ॥

❋ ❋ ❋

अध्यवसाय हि पुण्य वा, पाप–कर्म का बंध।
सदा कराता, और मुनि, समय–सु–लीन अबंध ॥ 86 ॥

❋ ❋ ❋

अध्यवसाय, परिणाम व, भाव, चित्त, विज्ञान।
मति, बुद्धि, व्यवसाय इक, – अर्थ, समय में जान ॥ 87 ॥

❋ ❋ ❋

विकल्प ही व्यवहार है, निश्चय में वह हेय।
निश्चय में मुनि मोक्ष को,– पायें, समय सु–ज्ञेय ॥ 88 ॥

❋ ❋ ❋

व्रत, तप, गुप्ति, शील वा, समिति आदिक पाल।
अभव्य सुख इह–लोक बस,– पाय, समय बेहाल ॥ 89 ॥

❋ ❋ ❋

अभव्य-जीव धारण करे, -धर्म, समय न जान।
भोग-मात्र की चाह हो, भव-भव भ्रमत अजान॥90॥

❋ ❋ ❋

शास्त्र-पठन जो ज्ञान है, है पदार्थ-श्रद्धान।
समय दया चारित्र है, व्यवहारी पहचान॥91॥

❋ ❋ ❋

आत्म रहा सद्ज्ञान है, दर्श, चरित-मय मान।
त्याग व संवर है समय, निश्चय-नय से जान॥92॥

❋ ❋ ❋

नहीं कर्म के बंध से,- बंधता, ज्ञानी होय।
न अनुमोदन भोज्य की, समयसार-मय होय॥93॥

❋ ❋ ❋

राग-द्वेष-मय भाव से, विकार-मय जब होय।
अज्ञानी बन कर्म को, पर-समयी बन जोय॥94॥

❋ ❋ ❋

मुक्त-विकल्प-समाधि हि, उत्तम-प्रतिक्रम होय।
आत्म-बाह्य तब ही समय, कर्म-बंध में खोय॥95॥

❋ ❋ ❋

बन्धन जाने जो भविक, फिर भी न पुरुषार्थ।
छेद करें न कर्म का, समय मोक्ष न सार्थ॥96॥

❋ ❋ ❋

काटे, छेदे, भेद-कर, विधि से मुक्ति पाय।
भविक कर्म का नाश कर, समय शिवालय भाय ॥ 97 ॥

❋ ❋ ❋

बंध-स्वभाव जु जानकर, स्व-स्वभाव भी जान।
हो विरक्त फिर कर्म को, करें समय से हान ॥ 98. ॥

❋ ❋ ❋

प्रज्ञा-द्वारा कर्म को, दूर करें भवि लोग।
वैसे प्रज्ञा से करें, शुद्ध-समय का भोग ॥ 99 ॥

❋ ❋ ❋

कौन रहा ज्ञानी यहाँ, जो आतम से भिन्न।
पर-पदार्थ को निज कहे, समय-मूढ़ न अन्य ॥ 100 ॥

❋ ❋ ❋

हो अपराधी भय करे, जग में भटके खिन्न।
निरपराध निःशंक हो, समय-ज्ञान-सह धन्य ॥ 101 ॥

❋ ❋ ❋

आत्म-लीनता काल में, प्रतिक्रमण विष-कुंभ।
अप्रतिक्रमण आदि जब, समय-थित अमृत-कुंभ ॥ 102 ॥

❋ ❋ ❋

कर्मोदय में जीव यह, अज्ञ असंयत होय।
नहीं कर्म-फल भोगता, समय अबंधक सोह ॥ 103 ॥

❋ ❋ ❋

मिष्ट-दुग्ध का पान-कर, नहीं सर्प विष-खोय।
अभव्य पढ़ता फिर वहाँ, समय अशुभ ही होय ॥ 104 ॥

❋ ❋ ❋

मीठा कडुवा विज्ञ लख, ना ही भोक्ता होय।
निर्वेगी विधि को लखे, अभुक्त-समयी सोह ॥ 105 ॥

❋ ❋ ❋

कर्त्ता-विष्णु लोक का, वैसा समयी कर्म- ।
-कर्त्ता माने, मोक्ष तब, नहीं मिले निज-धर्म ॥ 106 ॥

❋ ❋ ❋

पर-वस्तु न आप हों, होयँ न हि मम-धर्म।
उसका कर्त्ता मानता, मिथ्या-समयी कर्म ॥ 107 ॥

❋ ❋ ❋

पर्याय व व्यवहार से, पर का कर्त्ता जान।
न माने समयी वही, मिथ्या-दृष्टि मान ॥ 108 ॥

❋ ❋ ❋

मिथ्या-समयी भाव का, कर्त्ता अज्ञ है जीव।
उसी हेतु मिथ्यात्वमय,- बनता कर्म अजीव ॥ 109 ॥

❋ ❋ ❋

निश्चय-समयी विज्ञ वह, ज्ञानमयी सुविचार।
करे अज्ञ भी भाव को, अज्ञ-रूपता धार ॥ 110 ॥

❋ ❋ ❋

जीव-द्रव्य के गुण सभी, अन्य-द्रव्य न होयँ।
रागादि-परिणाम सब, अनन्य-समयी होय॥ 111॥

❋ ❋ ❋

अन्य-द्रव्य के हेतु से, हो न अन्य का घात।
निज-स्वभाव से हो रहे, समय स्वगुण का साथ॥ 112॥

❋ ❋ ❋

शिल्पी मन-वच-काय से- अन्य-रूप न होय।
वैसे ज्ञानी लीन जब, समयी निज में खोय॥ 113॥

❋ ❋ ❋

शिल्पी मन-वच-काय से, अन्य-रूप जब होय।
अज्ञानी हो, पर-समय, तन्मय पर में खोय॥ 114॥

❋ ❋ ❋

खड़िया-मिट्टी भीत को, धवल करे यह मान।
तन्मय ना फिर, समय भी, निश्चय-नय से जान॥ 115॥

❋ ❋ ❋

खड़िया-मिट्टी भीत को, धवल करे यह मान।
तन्मय हो जिसमें समय, - का व्यवहार सुजान॥ 116॥

❋ ❋ ❋

राग, द्वेष व मोह से, रत्नत्रय हो घात।
तीन-गुप्ति-मय ध्यान से, समय स्वयंमय जात॥ 117॥

❋ ❋ ❋

जहाँ छुड़ाकर दूर हो, पर से; ऐसा कर्म।
समयलीन निश्चय कहें, प्रतिक्रम आदि धर्म ॥ 118 ॥

❋ ❋ ❋

शब्दादिक जड़ आत्म न, फिर भी मोही होय।
मोक्ष मिले ना पर–समय; अज्ञानी बन होय ॥ 119 ॥

❋ ❋ ❋

कर्म किया मैंने कहे, कर्म–चेतना होय।
सुख–दुख भोगे जब समय; कर्म–फली तब होय ॥ 120 ॥

❋ ❋ ❋

तज अज्ञान हि चेतना, समाधि में लवलीन।
ज्ञान–चेतना–मय समय, शुद्ध–ध्यान लवलीन ॥ 121 ॥

❋ ❋ ❋

नहीं शास्त्र में ज्ञान है, ना जाने वह शास्त्र।
मात्र समय ही जानता, चेतन ही वह मात्र ॥ 122 ॥

❋ ❋ ❋

ना जड़ को निज–रूप में, ग्रहण, त्याग जब होय।
विज्ञ वही निश्चय कहा, समय–स्वभावी होय ॥ 123 ॥

❋ ❋ ❋

बाह्य–मात्र के भेष ये, मोक्षमार्ग न होयँ।
रत्नत्रय व्यवहार से, मोक्षमार्ग विधि–धोय ॥ 124 ॥

❋ ❋ ❋

रत्नत्रय हो आत्म में, निश्चय से वह आत्म।
मोक्षमार्ग होता समय, पाता है परमात्म ॥ 125 ॥

❋ ❋ ❋

ज्ञानी बनकर तत्त्व के, अर्थ,-लीन जो होय।
समयसार परमात्म को,- पाता शिव-बन सोह ॥ 126 ॥

❋ ❋ ❋

समयसार-स्वाध्याय से, मिला निजातम-गीत।
अध्यात्म-समयोदय कृति, रची, सार-नवनीत ॥ 127 ॥

❋ ❋ ❋

समयआत्म-निज सार है, समय शास्त्र का नाम।
समय जैन मत है कहा, समय काल, निजधाम ॥ 128 ॥

❋ ❋ ❋

कुन्दकुन्दाचार्य को, नमन करें दिन-रात।
समयसार के ध्यान से, रहे मोक्ष तक साथ ॥ 129 ॥

❋ ❋ ❋

भूल-चूक गर हो गई, समयी पढ़े सुधार।
सर्व-परिग्रह त्याग कर, महाव्रतों को धार ॥ 130 ॥

प्रशस्ति

लखनादौन शुभं नगर, महावीर भगवान।
शरण मिली; फिर काव्य को, लिखा समय कर पान ॥ 131 ॥

❋ ❋ ❋

पच्चिस सौ संवत् मिला, सैतालीस के साथ।

वीर-प्रभु के मोक्ष का, परम-समय पा-हाथ ॥ 132 ॥

❋ ❋ ❋

जो भी पढ़ व गायेंगे, समयोदय गुण-गान।

उत्तम-सुख को धारकर, होगा शुभ-कल्याण ॥ 133 ॥

❋ ❋ ❋

विद्यासागर-सूरि की,- कृपा से सुकृति पूर्ण।

‘**आर्जवसागर**’-सूरि की,- कृति दे सम-शिव पूर्ण ॥ 134 ॥

❋ ❋ ❋

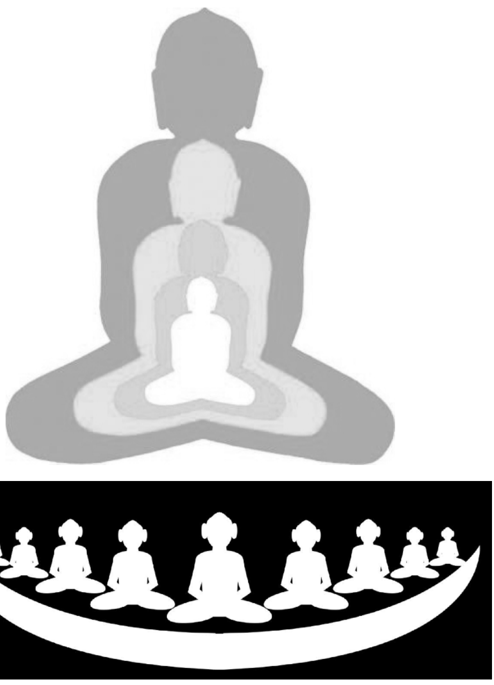

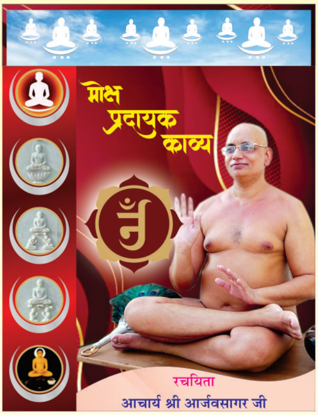

मोक्ष मंजिल का सोपान-मोक्ष प्रदायक काव्य

जैन आगम के सार रूप सौरभ महकाने वाली नौ काव्य कृतियों का नाम मोक्ष प्रदायक काव्य रखा गया है। प्रस्तुत कृति में रचयिता ने धार्मिक और आध्यात्मिक अत्यन्त-सरल शब्दों में पद्यमय दस शतक काव्यों की रचना की है जिसका पाठन-पठन भव्यों को मोक्ष रूपी मंजिल को पाने का परम साधन बनेगा उक्त कृति में; आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग प्रभावना (द्विशतक) काव्य, तीर्थंकर जिन स्तुति शतक, सम्यक् ध्यान शतक, श्री अंतादि शतक, गुरु-गुण महिमा काव्य, आशीर्वाद शतक, धर्म भावना शतक, अध्यात्म समयोदय काव्य रूप इन दस शतकों के माध्यम से वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का गुणानुवाद एवं आत्मा को परमात्मा बनाने का तथा मोक्ष को प्रदान कराने वाले पथ का दिग्दर्शन किया है। अतः कृति का मोक्ष प्रदायक काव्य नाम सार्थक है; जो कि भव्यों को निश्चित रूप से मोक्ष मंजिल का सर्वोत्तम साधन बनेगा।

-गुरु पद चञ्चरीक

पिड़ावा में गुरु आशीर्वाद से निर्मित रजत रथ।